ॐ

भूमिका

प्रकट हो कि मुमुक्षु पुरुष ईश्वरतत्त्व अर्थात् ईश्वर के जाननेमें बड़ी कोशिश करतेहैं परन्तु उनलोगोंका मन स्थिर होता नहीं क्योंकि अन्य मतवादी उनका चित्त स्थिर होनेदेते नहीं इसीसे मनुष्य की बुद्धि भ्रममें पड़ी रहती है और उनका जीवन व्यर्थ चलाजाता है इसलिये यह ईश्वरदीपिका नाम ग्रन्थ बनाया है इसमें सर्वग्रन्थों का मत लेके निर्मित किया है कि इसको मुमुक्षु पुरुष विचारें इस के जानने से दीपक के समान प्रकाश हो जायगा कि ईश्वर क्या वस्तु है और मैं क्या वस्तुहूं और यह भ्रमरूपी जगत् भासरहा है यह क्या वस्तु है यह सब इसमें देखने से और विचार करने से प्रकाशित होजायगा और अज्ञान याने अविद्या जो हृदय में छारही है दूरहो जायगी याने अन्धकार में दीपक ॥
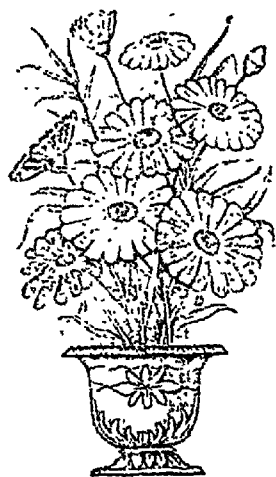
अथ ईश्वरदीपिका सटीक ॥

ॐ शन्नोदेवीरभीष्टयआपोभवन्तुपीतये शंयोरभिस्रवन्तुनः ॥ १ ॥

अर्थः—सबका प्रचारित करनेवाला और सबको सुख देनेवाला और सर्वव्यापक पूर्णब्रह्म आनन्द की प्राप्तिके लिये हमारे ऊपर दया करें और वही परमात्मा हमारे ऊपर सुखकी वृष्टि करें ॥ १ ॥

ॐ उद्वयंतमसस्परिस्वः पश्यन्तउत्तरंदेवं देवत्रासूर्य्यमगन्मज्योतिरुत्तमम् ॥ २ ॥

अर्थः—हे परमेश्वर ! आप प्रकाशस्वरूप हैं और हमेशा वर्तमान हैं और सब मनोंके मन हैं और आप सब के आत्मा हैं और ज्ञानस्वरूप हैं आप के स्वरूप में प्राप्त होकर प्रार्थना करते हैं कि, आप हमारी रक्षाकरें ॥ २ ॥

नमःशम्भवायच मयोभवायच नमः शङ्करायच मयस्करायच नमः शिवायच शिवतरायच ॥ ३ ॥

अर्थः—जो आनन्दस्वरूप संसारका सुखदेनेवाला

और प्रकाश करता अपने भक्तोंका रक्षक जो परमात्मा उसको मंगलरूप से मैं वारंवार नमस्कार करताहूं ॥३॥

सदैववासनात्यागः शमोयमितिशब्दितः ॥ निग्रहो बाह्यवृत्तीनां दमइत्यभिधीयते ॥ ४ ॥

अर्थः—अव प्रथम शम और दम को कहते हैं ॥ संसारकी वासनाओं का त्याग करना शम कहावे है और बाह्य इन्द्रियों का रोकना अर्थात् नासिका कर्ण आदि इन्द्रियोंको गंधशब्दादि विषयोंसे हटाकर अपने अधीन कर लेना दम कहावे है ॥ ४ ॥

विषयेभ्यःपरावृत्तिः परमोपरतिर्हिसा ॥ सहनं सर्वदुःखानां तितिक्षा सा शुभा मता ॥ ५ ॥

अर्थः—अव उपरति और तितिक्षा को कहते हैं ॥ विषयों से अत्यन्त चित्तको अलग करदेने का नाम उपरति है और संपूर्ण प्रकारके दुःखों को सहन करना सो तितिक्षा कहावे है ॥ ५ ॥

निगमाचार्यवाक्येषु भक्तिःश्रद्धेति वि

श्रुता । चित्तैकाग्र्यन्तु सल्लक्ष्यसमाधानमितिस्मृतम् ॥ ६ ॥

अर्थः—अब श्रद्धा और समाधान कहतेहैं ॥ वेद शास्त्रादि और गुरुके वाक्योंमें जो भक्ति करना है सो श्रद्धा कहावे है और शब्दादि विषयों से चित्तको रोककर मोक्षके करनेवाले श्रवण मनन निदिध्यासन द्वारा एकान्त में बैठकर नित्य अनित्य के विचार को समाधान कहते हैं ॥ ६ ॥

बोधोऽन्यसाधनेभ्यो हि साक्षान्मोक्षैक साधनम् ॥ पाकस्यवह्निवज्ज्ञानं विनामोक्षोनासिद्ध्यति ॥ ७ ॥

अर्थः—यज्ञ व्रत उपासना आदि जो अनेक साधन हैं उनमें केवल एक आत्मज्ञानही मोक्षकी प्राप्ति का मुख्य उपाय है जिस प्रकार अन्न आदि का भोजन बनाने में पात्र काष्ठ जल आदि अनेक वस्तुओं की आवश्यकता होयहै परंतु प्रधानकारण अग्निही होय है क्योंकि यदि सम्पूर्ण सामग्रीहों और एक अग्निही नहीं होय तौ भोजन नहीं बनसकै है इसी प्रकार मन्त्र जप आदि अन्य साधनों के होनेपर भी आत्मज्ञान हुए विना मोक्षकी

प्राप्ति कदापि नहीं होसके है सोई श्रुतियोंमेंभी कहाहै कि ऋतेज्ञानान्न मुक्तिः ॥ ज्ञान के विना पुरुषकी मुक्ति नहीं होयहै और॥ज्ञानादेवतु कैवल्यम्॥ ज्ञानसेही कैवल्यपद की प्राप्ति होती है॥ तथा ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः॥ आत्मदेव को जानकरही सम्पूर्ण बन्धनों से मुक्ति होती है॥ ७॥

अविरोधितयाकर्म्मनाविद्यांविनिवर्त्तयेत् ॥ विद्याऽविद्यांनिहन्त्येवतेजस्तिमिरसङ्घवत् ॥ ८॥

अर्थः—कर्म्म अविरोधी होनेके कारण अविद्याके दूर करनेमें समर्थ नहीं है अर्थात् कर्म्म और अविद्या (अज्ञान) इन दोनोंका परस्पर कोई विरोध नहीं है क्योंकि यह दोनों जड़ हैं इस कारण कर्म्म कदापि अविद्या को दूर नहीं करसके है परन्तु जिस प्रकार तेज और अन्धकारका विरोध होयहै और तेज अन्धकार को नष्ट करदेताहै उसी प्रकार विद्या कहिये मैं नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूपहूं इस प्रकार ब्रह्म और जीवात्माकी एकताके ज्ञान और अविद्या कहिये मैं मनुष्यहूं दुःखीहूं सुखीहूं इत्याकारक अज्ञान विरोध है इस कारण विद्या जो ज्ञान सो

अविद्या कहिये अज्ञान को नष्ट करदेती है ॥ ८ ॥

नानाशास्त्रंपठेत्प्राणी नानादैवप्रपूजनम् ॥ आत्मज्ञानंविनापार्थसर्व्वंकर्म्मनिरर्थकम् ॥ ९ ॥

अर्थः—श्रीकृष्ण महाराज अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन ! नाना (बहुत) रक़मके मनुष्य शास्त्र पढ़ता है और नानातरह के देवों की पूजा करते हैं परन्तु आत्मज्ञानके विना सब निरर्थक है अर्थात् आत्मज्ञानही मुख्य साधन है ॥ ९ ॥

आचारः क्रियते कोटिर्दानं काञ्चनभूषणम् ॥ आत्मानंनैवजानाति मुक्तिर्नोसद्गतिंविना ॥ १० ॥

बहुत तरहका आचार अर्थात् कोटिन प्रकार के आचार याने क्रिया और काञ्चनों के दान अर्थात् सोना चाँदी जवाहिरातों के दान करनेसेभी आनन्द नहीं होता जहांतक आत्माको नहीं पहचानेगा और सत्कर्म नहीं करेगा याने सत्शास्त्र और सत्संग करके विचार नहीं करेगा और ब्रह्मानन्द को नहीं पहँचानेगा तहांतक मुक्ति नहीं होवेगी ॥ १० ॥

कोटियज्ञःकृतो येन कोटिदानं जपं च यः ॥ गवांदानञ्चासकृतस्यान्मुक्तिर्नास्तिनसंशयः ॥ ११ ॥

अर्थः—कोटिन तरहके जो यज्ञ करता है और कोटिन तरहके दान और जप जो करताहै और गौवोंके दानभी करता है परंतु हे अर्जुन ! इन सवके करने से मुक्ति नहीं होगी अर्थात् ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होगी इस में कोई भी संशय नहीं है ॥ ११ ॥

जित्वासर्वकृतंकर्म ज्ञात्वाविष्णुंगुरुंतथा ॥ कल्पंविकल्पमात्यज्य पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १२ ॥

अर्थः—सर्वकर्मोंको जीतकरके याने काम क्रोधादिकनको जीतकरके और इन्द्रियादिकन के पदार्थोंके विषयों को जीतकरके और श्रीगुरुके उपदेश को धारण करके चैतन्यस्वरूप जो ब्रह्म है उसमें मनको लगाना और कल्प विकल्प का त्याग करना अर्थात् नित्य अनित्यका विचारकरना इससे फिर संसाररूपी जन्म मरण से रहित होजाता है ॥ १२ ॥

यद्वाचानाभ्युद्यते येनवागभ्युद्यते तदे

वब्रह्मत्वं विद्धिनेदंयदीदमुपास्यते ॥ यच्चक्षुषा न पश्यन्ति येनचक्षूंषि पश्यतितदेवं ब्रह्मत्वं विद्धिनेदंयदीदमुपास्यते ॥ यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येनश्रोत्रेणइदंश्रुतं तदेवब्रह्म त्वं विद्धिनेदं यदीदमुपास्यते ॥ यन्मनसा नमनुते येनाहुर्मनोमतं तदेवब्रह्मत्वं विद्धि नेदंयदीदमुपास्यते ॥ यत्प्राणेननप्रणीयते येनप्राणःप्रणीयते तदेवब्रह्मत्वं विद्धिनेदंय दीदमुपास्यते ॥ १३ ॥

अर्थः—वो वाचाके साथ नहीं बोलता है उसकी सहायता से वाचा बोलती है उसी को तू ब्रह्म जान जिस की उपासना करता है वो ब्रह्म नहीं है अर्थात् मूर्ति आदियों पर ब्रह्मभाव करता है वो ब्रह्मनहीं है ॥ जो चक्षुके द्वारा नहीं देखता है जिसके द्वारा चक्षु अपने कार्य को करते हैं उसीको तू ब्रह्मजान जिसकी उपासना करता है वो ब्रह्म नहीं है ॥ वो कानके द्वारा नहीं सुनता जिस के द्वारा कानसे सुना जाता है उसीको तुम ब्रह्म जानो जिस की उपासना करताहै वो ब्रह्म नहीं है ॥ वो मनके

द्वारा भ्रमण नहीं करता जिसके द्वारा मन भ्रमण करता है उसीको ब्रह्मजान जिसकी उपासना करता है वो ब्रह्मनहींहै ॥ वो प्राणके द्वारा श्वास नहींलेता जिसकेद्वाराप्राण अपनेकार्यों को सम्पादन करतेहैं उसीको ब्रह्मजान जिसकी उपासना करताहै वो ब्रह्मनहीं है १३॥

दिग्देशकालाद्यनपेक्षि सर्वगं शीतादिहृन्नित्यसुखं निरञ्जनम् ॥ यःस्वात्मतीर्थंभजतेविनिष्क्रियः ससर्ववित्सर्वगतोऽमृतो भवेत् ॥ १४ ॥

अर्थः-जो सर्वप्रकारकी क्रियाओं करके रहित ज्ञानी पुरुष एकाग्रचित्त होकर पूर्वादिदिशा और वैकुंठ कैलासादिदेश तथा भूत भविष्यत् वर्त्तमानकाल की अपेक्षारहित सर्वव्यापक और शीतादिक हरणकरने वाले अर्थात् शीतोष्णादि द्वन्द्वों के नाशक नित्य सुखरूप और निरञ्जन कहिये माया के कार्य जगत्रूप मल से रहित आत्मतत्त्वरूप तीर्थ को सेवन करता है अर्थात् विचार सेवन मनन आदि करता है अर्थात् जो पुरुष सम्पूर्ण कर्मोंको त्यागकर आत्मतत्त्वरूप तत्त्व का विचार करता है वह सर्वज्ञ और सर्वव्यापक तथा अमृत कहिये

मुक्त होकर ब्रह्मरूप होजाताहै इसकारण मुमुक्षु पुरुषोंको आत्मतत्त्वरूपी तीर्थका सेवन करना अत्यन्त आवश्यक है सोई महाभारत के विषे कहा है कि ॥ आत्मानदीसंयमतोयपूर्णा सत्यावर्ता शीलतटा दयोर्मिः ॥ तत्राभिषेकं कुरु पांडुपुत्र नवारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा ॥ अर्थात् हे युधिष्ठिर ! संयम है जल जिस में और सत्य है भँवर जिसमें और शीलहै तट जिसका और दयाहै ऊर्मि (तरंग) जिसमें ऐसेआत्मरूपीनदी (तीर्थ)में स्नान करो जल से अंतर आत्मा शुद्ध नहीं होता है ॥ १४॥

उपासनाश्रितोधर्म्मोजातेब्रह्मणिवर्तते ॥
प्रागुत्पत्तेरजंसर्व्वंतेनासौकृपणःस्मृतः १५ ॥

अर्थः—धर्म उत्पन्न हुये ब्रह्म विषे वर्तताहै उत्पत्ति से पूर्व सर्व अजन्माथा उपासना के आश्रित हुआ तिससे यह कृपण चिन्तन किया है अर्थात् देहके धारण से धर्म जो जीव सो आकाशादि भूतों के समुदायके आकारसे उत्पन्न हुये ब्रह्म विषे तिसका अभिमानी होके वर्तताहै सो उत्पत्ति से पूर्व सर्व अजन्माथा इसप्रकार काल करके परिच्छिन्न वस्तुको मानताहै सो जीव पुनः उपासनाको पुरुषार्थ का साधन जानके तदाश्रित हुआ देहपात हुये

पश्चात् तिसही ब्रह्मको प्राप्त होवेगा इसप्रकार जिसका-रणसे मिथ्या ज्ञानवान् होयके स्थित होवे है तिसकारण से यह ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंने कृपण (अल्प) चिन्तन किया है इसका यह अभिप्राय है कि उपासनाके आश्रितहुआ। अर्थात् उपासना को अपनेमोक्षका साधनमानके प्राप्त हुआ॥ उपासकोऽहं ममोपास्यब्रह्मतदुपासनं कृत्वा जाते ब्रह्मणि इदानीं वर्तमानोऽजं ब्रह्मशरीरपातादूर्ध्वं प्रतिपत्स्येप्रागुत्पत्तेश्वा जामदं सर्वमहंच॥ मैं उपासकहूं मेरा उपास्य ब्रह्महै तिस उपासना करके अब भूतों के संघात के आकार से उत्पन्न हुये ब्रह्म विषे वर्त्तमानहूं और शरीरके पतन हुये पश्चात् अजन्मा ब्रह्मको प्राप्त होउंगा और उत्पत्ति से पूर्व अवस्था विषे यह सर्व अजन्मा था और मैं भी तैसाही अजन्माथा इसप्रकार जिसकरके उपासक मानताहै एतदर्थं पूर्व अवस्थावाले ब्रह्मको विषय करनेवाली अजन्मापने की श्रुतिबनेहै॥ इदानीं जातो जाते ब्रह्मणि च वर्त्तमानउपासनया पुनस्तदेव प्रतिपत्स्य इत्येव उपासनाश्रितोधर्म्मः॥ उत्पत्ति अवस्था विषे मैं जन्मको पायाहूं और इस स्थित अवस्थाविषे उत्पन्न हुये ब्रह्म विषे अर्थात् भूतों के संघातरूप शरीराकार से उत्पन्नहुये ब्रह्मविषे वर्त्तमानहौं और उत्पत्ति से पूर्व जिस

रूप वालाहुआ स्थितथा तिसहीको पुनः प्रलय अवस्था विषे उपासनासे प्राप्त होऊंगा इस रीतिसे उपासाना के आश्रित हुआ साधक जीवसे जिसहेतुसे इसप्रकारकरके अल्प ब्रह्मकावेत्ताहै तिसही हेतुसे यह नित्य अजन्मा ब्रह्मके दर्शी अनुभवी महात्मा पुरुषोंने उक्त प्रकार के उपासकको कृपण दीन अल्पकरकेचिन्तन कियाहै॥१५॥

दम्भोदर्पोऽभिमानश्च क्रोधःपारुष्यमेवच। अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थसम्पदमासुरिम् ॥ १६ ॥

अर्थः—पाखण्ड अहंकार मान क्रोध पारुष्यता अज्ञान हे अर्जुन ये संपदा आसुरी है असुरों के कामहै ॥१६॥

आत्मन्येवाखिलं दृश्यं प्रविलाप्यधियासुधीः ॥ भावयेदेकमात्मानं निर्मलाकाशवत्सदा ॥ १७ ॥

अर्थः—सुधी कहिये शुद्ध अन्तःकरणवाला अधिकारी पुरुष विवेकिनी बुद्धि करके सम्पूर्ण दृश्य प्रपञ्च आत्मा के विषेही लीन करके अर्थात् आत्माके बिषे विकार कथनमात्रही है उसको दूरकरके अर्थात् पृथ्वी को जलके बिषे लीन करै जलको तेज (अग्नी) के विषे

लीनकरै और तेजको वायुके विषे लीनकरै वायुको आ-काश के विषे लीनकरै और आकाशको मूलप्रकृति (मा-या) के विषे लीनकरै और मूलप्रकृति को शुद्ध ब्रह्म के विषे लीनकरके तदनन्तर शुद्ध व्यापक ब्रह्म मैंहीहूं ऐसा चिन्तवन करै जैसे शरत्काल के विषे आकाश धूलीमेघ आदि उपाधी करके रहित स्वच्छ होताहै तिसी प्रकार आत्माको स्वच्छ एकरस चिन्तवन करना ॥ १७ ॥

इन्द्रियैरिन्द्रियार्थेषुगुणैरपिगुणेषुच ॥ ह्यगु र्याष्वप्यहं कुर्यान्नविद्वान्यस्त्वविक्रियः १८॥

अर्थः—इन्द्रियों के पदार्थ विषे इन्द्रिय करिकै जे भये सत् असत् कर्म गुणों करिकै गुणों विषे तिसकर्मों का फल ग्रहणकरता अज्ञानी अपने को मानताहै कि हम कर्मकिया जिनने आत्मा को जान लिया कि आत्मा अकर्ता है विकार से हीन सो ज्ञानी अपने को नहीं मानता ॥ १८ ॥

विश्वोहिस्थूलभुङ्नित्यं तैजसःप्रविविक्त भुक् । आनन्दभुक्तथाप्राज्ञस्त्रिधाभोगंनिबो धत ॥ १९ ॥

विश्व नित्यही स्थूलभुक् है तैजस प्रविविक्तभुक्

है अर्थात् जाग्रदवस्थाका अभिमानी विश्व नित्यही स्थूल भोगोंका भोक्ताहै और स्वप्नावस्था का अभिमानी तैजस नित्यही वासनामय सूक्ष्म भोगोंका भोक्ताहै और आनन्दभुक्तथा प्राज्ञस्त्रिधा भोगं निबोधत । तैसे प्राज्ञ आनन्दभुक् है तीन प्रकार के भोगों को जानो अर्थात् जैसे जाग्रदवस्था का अभिमानी विश्व स्थूल भोगों का और स्वप्नाभिमानी तैजस वासनामय सूक्ष्म भोगों का भोक्ता है तैसेही सुषुप्ति अवस्थाका अभिमानी प्राज्ञ आनन्दका भोक्ताहै इस माफ़िक तीन भोग जानना १९॥

स्थूलंतर्पयतेविश्वंप्रविविक्तन्तुतैजसम् ॥
आनन्दश्चतथाप्राज्ञंत्रिधातृप्तिंनिबोधत २०

स्थूल भोग विश्व को तृप्त करै हैं सूक्ष्म तैजसको तृप्त करै हैं अर्थात् शब्द आदि विषय स्थूलभोग जाग्रद-भिमानी विश्वको तृप्तकरताहै और जाग्रत्की वासना-मय सूक्ष्म भोग स्वप्नाभिमानी तैजस को तृप्त करता है तैसेही ॥ आनन्दश्च तथा प्राज्ञं त्रिधा तृप्तिं निबोधत ।तैसे आनन्द प्राज्ञ को तृप्तकरैहै तीन प्रकार की तृप्तिको जानो ॥ २० ॥

अनुभूतोप्ययं लोकोऽव्यवहार्य्यक्षमोऽपि

सन्। असद्रूपोयथास्वप्नउतरक्षणबाधतः२१
स्वप्नो जागरणेऽलीकः स्वप्नेपिजागरोन
हि । द्वयमेवलयेनास्तिलयोपिह्युभयोर्न
च ॥ २२ ॥

अर्थः—जिस प्रकार स्वप्नावस्था में स्वप्नमें देखाहुआ पदार्थ सम्पूर्ण सत्स्वरूप मालूम पड़ेहै स्वप्न से दूसरेक्षण में जागतेही सब असत्स्वरूप होजाय है इसप्रकार इस संसार का व्यवहार सत्य मालूम होयहै और असत्य स्वरूप होयहै जाग्रदवस्था में स्वप्न मिथ्या मालूम होयहै और स्वप्नावस्था में जाग्रत् मिथ्या मालूम होय है और सुषुप्ति अवस्था में स्वप्नजाग्रत् दोनों मिथ्या होयहैं इसी प्रकार स्वप्न और जाग्रत् अवस्था में सुषुप्ति मिथ्या प्रतीत होयहै ॥ २१ । २२ ॥

त्रयमेवंभवेन्मिथ्या गुणत्रयविनिर्मित
म् । अस्यद्रष्टागुणातीतोनित्योह्येकश्चिदा
त्मकः ॥ २३ ॥

अर्थः—सतोगुण रजोगुण तमोगुण से बनेहुये जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीनों ऊपर कहेहुये प्रकारसे मिथ्या होय हैं

इन तीनों अवस्थाओंका साक्षी गुणातीत अर्थात् गुण-रहित चिन्मय चैतन्यस्वरूप सत्यहै ॥ २३ ॥

यद्वन्मृदिघटभ्रांतिंशुक्तौवारजतस्थितिम् । यद्वद्ब्रह्मणिजीवत्वंवीक्ष्यमाणेनपश्यति ॥ २४ ॥

अर्थः—यदि आत्मामें तीनों गुण मिथ्याहैं तो जीव ही सत्यहो तहां कहते हैं जिसप्रकार मृत्तिका में घटकी भ्रांति है परन्तु घटनष्ट होनेपर मृत्तिकाही दृष्टिगोचरहोय है और जैसे शुक्ति में चांदी की भ्रांति होयहै और जब समीप जाके देखेंहैं तो सीपी होय है इसी प्रकार जब तक आत्माका ज्ञान नहीं होयहै तबतब जीवहै ऐसीप्रतीतिहोयहै परन्तु ब्रह्मका साक्षात्कार होनेसे जीवको नहीं देखेहै ॥ २४ ॥

यथास्वप्नमयोजीवोजायतेम्रियतेऽपिच । तथाजीवाअमीसर्वेभवन्तिनभवन्तिच २५ ॥

जैसे स्वप्न के जीव जन्मता है और मरताभी है तैसे ही यह सर्व जीव होतेभी हैं और नहीं भी होते हैं अर्थात् स्वप्न विषे अनहुयेही जन्मते हैं अरु मरते हैं तैसे जगत् के जीवभी न हुये जन्मते हैं और मरते हैं ॥ २५ ॥

संसारःस्वप्नतुल्योहिरागद्वेषादिसंकुलः॥
स्वकालेसत्यवद्भातिप्रबोधेसत्यसद्भवेत् २६॥

राग द्वेष आदि करके व्याप्त यह संसार स्वप्नके तुल्य मिथ्याहै क्योंकि स्वप्नकाल की घटना केवल स्वप्नावस्था में ही सत्यसी प्रतीति होतीहै और प्रबोध (जाग्रत्) अवस्थाहोने पर उसकी असत्यता प्रतीत होजायहै उसी प्रकार अज्ञान अवस्था में यह संसार सत्यसा प्रतीतहोता है और जब तत्त्वज्ञान होजाताहै तब संसार स्वयं मिथ्या प्रतीत होने लगेहै इस कारण इस भ्रमकल्पित संसार को आत्माकी अद्वितीयतामें कोई हानि नहीं होयहै॥ २६॥

यथामायामयोजीवोजायतेम्रियतेपिच।
तथाजीवाअमीसर्वेभवन्तिनभवन्तिच॥२७॥

जैसे मायामय जीव उपजताहै और मरताभी है तैसे यहसर्व जीवहोतेभीहैं और नहींभी होते हैं अर्थात् जैसे इन्द्रजालिक मायावियोंकी मायासे मायामयजीव जन्मता है और मरताभीहै तैसेही प्रज्ञप्तिमात्र चैतन्यकी माया से जो कि वास्तव में है नहीं यह अण्डज आदि सर्व जीव उत्पत्त्यादि होतेभीहैं और नहीं भी होते हैं२७॥

अजमनिद्रमस्वप्नं प्रभातं भवति स्वय म् ॥ सकृद्विभातो ह्येवैष धर्मो धातुस्वभाव तः ॥ २८ ॥

अर्थः–नाम अज है निद्रासे रहित है स्वप्नरहित है और आपही प्रकाशरूप होताहै और सर्वदा प्रकाशरूप ही है यह धर्म स्वभावसे धातु है अर्थात् सर्वदा प्रकाश-रूपही यह इस लक्षणवाला आत्मा नामक धर्म स्वभाव से ही धातु कहिये धारण करने वाला है ॥ २८ ॥

अलब्धावरणाः सर्वे धर्माः प्रकृतिनिर्म लाः ॥ आदौ बुद्धास्तथा मुक्ता बुध्यन्त इति नायकाः ॥ २९ ॥

अर्थः–अर्थात् सर्व धर्म कहिये आत्मा बुद्ध्यादिरूप उपाधि को लेके है घटाकाशवत् ऐसा जानना और नि-रुपाधि रूप आत्मा तो एकही है महदाकाशवत् अवि-द्यादिक बंधनरूप आवरण को अभास कहिये न्यून रहित है और स्वभाव से निर्मल कहिये सदा शुद्ध है जैसे धर्माख्य आत्मा आवरणरहित शुद्ध है तैसे आदिविषे कहिये बौद्धस्वरूपहै और तैसे ही नित्यमुक्त है ॥ २६ ॥

क्रमते न हि बुद्धस्य ज्ञानं धर्मेषु तायिनः

म् ॥ अरूपगुणवर्णाख्यं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ३० ॥

अर्थः—आत्मा अणुरूप (सूक्ष्मरूप) नहींहै और ॥ अणोरणीयान् महतो महीयान् ॥ इस श्रुति में जो आत्मा को अणुरूप वर्णन किया है सो उसका तात्पर्य यह है कि आत्मा का स्वरूप दुर्विज्ञेय अर्थात् अति कठिनतासे जानने योग्य है किन्तु श्रुतिका तात्पर्य यह नहीं है कि आत्मा अणुमात्र है और आत्मा स्थूल है अर्थात् स्थूल (महान्) नहीं है और उपरोक्त श्रुतिके विषे जो आत्मा को महान्रूप वर्णन किया है उसका तात्पर्य यहहै कि आत्मा सम्पूर्ण का अधिष्ठानरूप होने से सर्व श्रेष्ठ है यह महान् पदका परिमाण अर्थ नहीं है और आत्मा ह्रस्व दीर्घ परिणाम से रहित है अज अव्यय अर्थात् जन्ममरणरहित है और अरूप कहिये शुक्ल पित्तादि अथवा सत्त्वादिके परिणामरहित और निर्गुण तथा वर्णहीन अर्थात् ब्राह्मणादि वर्णरहित जो ब्रह्म है उसकोही मुमुक्षुपुरुष निश्चय करता है ॥ ३० ॥

नकश्चिज्जायतेजीवः सम्भवोऽस्यनाविद्यते॥एतत्तदुत्तमंसत्यंयत्रकिञ्चिन्नजायते३१॥

इसजगत्का कारण नहीं तिसही करके कोईभी जीव जन्मता उपजता नहीं और ॥ एतत्तदुत्तमं सत्यं यत्र किञ्चिन्नजायते ॥ जिस विषे कुछ भी जन्मता नहीं यह तिनके मध्य उत्तम सत्य है अर्थात् जिस सत्यरूप एक अद्वितीयब्रह्म विषे उपायपने करके उक्तसत्यों के मध्य उत्तम सत्यहै इसका खुलासा यहहै कि व्यवहारविषे सत्य विषयका और जीवोंका जन्म मरणादिक स्वप्नादिकोंके जीवोंवत् है अर्थात् जैसे स्वप्नविषे जीवादिक अनेक पदार्थ उपजते विनशते हैं तैसेही यह जाग्रत् जीवादिकों को कल्पनामात्रही जानना कदापि कोई भी जीव जन्मता नहीं यह परमार्थ से जो सत्यहै इसीलिये मिथ्या भ्रममात्रहै ॥ २१ ॥

नोत्पद्यतेविनाज्ञानं विचारेणान्यसाधनैः ॥ यथापदार्थभानंहि प्रकाशेनविनाक्वचित् ॥ २२ ॥

विना ज्ञानके और साधनोंकरके नित्य अनित्य वस्तु का विचार नहीं होयहै जैसे सूर्य्यादिक प्रकाश के विना कहींभी कोई घटपटादि पदार्थोंका भान नहींहोयहै २२॥

कोहं कथमिदंजातं कोवैकर्त्तास्यविद्य

ते ॥ उपादानंकिमस्तीह विचारःसोयमीदृशः ॥ ३३ ॥

मैं कौनहूं यहसंसार किसप्रकार उत्पन्नहुआ कौन इस जगत्का कर्त्ता है और संसार का उपादानकारण कौन है इसप्रकार नानातरह का जो विचार करना है सो विचारहै ॥ ३३ ॥

निर्विकारोनिराकारो निरवद्योऽहमव्ययः ॥ नाहंदेहोह्यसद्रूपो ज्ञानमित्युच्यते बुधैः ॥ ३४ ॥

अर्थः—मैं निर्विकारहूं अर्थात् सदा एकरूपहूं और निराकार अर्थात् मेरा कोई आकार नहीं है मैं निरवद्यहूं अर्थात् अध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिक इन तीन तापों करके रहितहूं और अविनाशीहूं नाशवान् देह नहीं हूं इसप्रकार ज्ञानको पण्डितगण तत्त्वज्ञान कहे हैं ॥३४॥

निरामयोनिराभासो निर्विकल्पोऽहमाततः ॥ नाहंदेहोह्यसद्रूपो ज्ञानमित्युच्यते बुधैः ॥ ३५ ॥

अर्थः—मैं रोगहीनहूं अर्थात् मुझे राजयक्ष्मादि रोग

नहीं होयहै मुझे फलकी अभिलाषा नहीं है मैं कल्पना नहीं करूंहूं और सर्वव्यापीहूं मैं नाशवान्देह नहींहूं इस प्रकारके ज्ञानको पण्डितगण तत्त्वज्ञानकहते हैं ॥२५॥

निर्गुणोनिष्क्रियोनित्यो नित्यमुक्तोऽह्मच्युतः ॥ नाहंदेहोह्यसद्रूपो ज्ञानमित्युच्यते बुधैः ॥ २६ ॥

अर्थः—मैं रजोगुण सतोगुण तमोगुणरूप तीनोंगुणों करके रहितहूं क्रियाकरके रहितहूं नित्यहूं नित्यमुक्तहूं अर्थात् सर्वदाही बन्धनशून्यहूं अच्युतहूं अर्थात् सदा ज्ञानमयहूं मैं नाशवान् देहनहींहूं इसप्रकार ज्ञानको पण्डितजन तत्त्वज्ञान कहते हैं ॥ २६ ॥

आदिशान्ताह्यनुत्पन्नाः प्रकृत्यैवसुनिर्वृताः ॥ सर्वेधर्माःसमाभिन्ना अजंसाम्यंविशारदम् ॥ ३७ ॥

अर्थः—अर्थात् जिसकरके सर्वधर्म्म कहिये आत्मा आदि विषे कहिये नित्यही शान्तहै और अनुत्पन्नकहिये अजन्मा है और समान है और अभिन्न है इस प्रकार जिसकरके जन्मरहितहै ॥ ३७ ॥

ब्रह्मैवसर्व्वनामानि रूपाणिविविधानि

च ॥ कर्माण्यपिसमग्राणि बिभर्त्तीतिश्रुतिर्जगौ ॥ ३८ ॥

अर्थः-ब्रह्मही सर्वप्रकार के नाम और नानाप्रकार के रूप धारणकरताहै और नानाप्रकार के कर्म धारणकरता है ऐसा साक्षात् श्रुति कहती है ॥ ३८ ॥

सुवर्णाज्जायमानस्य सुवर्णत्वंचशाश्वतम् ॥ ब्रह्मणोजायमानस्य ब्रह्मत्वंचतथाभवेत् ॥ ३९ ॥

अर्थः-जिसप्रकार सुवर्ण के कटक कुण्डलादिक बनाये जाते हैं जबतक कुण्डलादि आकार रहा तबलोंरहा फिर गलानेसे सुवर्ण का सुवर्णही होजाताहै इसीप्रकार यह ब्रह्मसे उत्पन्नहुआ संसार जबलों किसी आकार में रहताहै तबलों रहता है अन्त में आकार दूर होनेपर भी ब्रह्मही होता है ॥ ३९ ॥

स्वल्पमप्यन्तरं कृत्वा जीवात्मपरमात्मनोः ॥ यःसन्तिष्ठतिमूढात्मा भयंतस्याभिभाषितम् ॥ ४० ॥

जो पुरुष जीवात्मा और परमात्मा में कुछभी भेदकरै है और माने है वह अज्ञानी पुरुष भयको प्राप्त होयहै अ-

र्थात् उनके चित्तको कदापि शान्ति नहीं होयहै ॥४०॥

प्रकाशोऽर्कस्यतोयस्य शैत्यमग्नेर्यथो ष्णता ॥ स्वभावःसच्चिदानन्द नित्यनिर्मल तात्मनः ॥ ४१ ॥

अर्थः—जिसप्रकार सूर्यका प्रकाश स्वभावहै अर्थात् स्वरूपहै और जिसप्रकार जलका शीतलता स्वभाव है तथा जिसप्रकरा अग्निका उष्णता स्वभावहै तिसीप्रकार आत्माका सत् चित् आनन्द नित्य और निर्मल स्वभाव है ॥ ४१ ॥

आत्मनःसच्चिदंशश्च बुद्धेर्वृत्तिरितिद्वय- म् ॥ संयोज्यचाविवेकेन जानामीतिप्रवर्त्त ते ॥ ४२ ॥

अर्थः—प्रत्यगात्माका सत् चित् अंश अर्थात् बुद्धिकी वृत्ति में पड़नेवाला आत्माका आभास (छाया) और अज्ञानस्वरूप आनन्द का अंश जो बुद्धिकी वृत्ति इन दोनों को एक में मिलाकर अज्ञान से मैं जानताहूं मैं सुखी हूं मैं दुःखी हूं इत्यादि अनुभव परागात्मा (जीवा- त्मा) करता है वास्तव में सर्वप्रकार के सम्बन्धरहित आत्मा के विषे ज्ञान सुख दुःखादि बुद्धिका वृत्तिरूप

परिणामहैं इसकारण ज्ञान सुख दुःखादिका आश्रय बुद्धि है आत्मा नहीं है और आत्मा के विषे जो ज्ञान सुख दुःखादि की प्रतीति होती है सो आत्मा तो स्वभावतः निर्विकार सच्चिदानन्दस्वरूपही है ॥ ४२ ॥

नतत्रसूर्य्योभातिनचन्द्रतारकं नेमाविद्युतोभांतिकुतोयमग्निः॥तमेवभान्तमनुभातिसर्वंतस्यभासासर्वमिदंविभाति ॥ ४३ ॥

अर्थः—न वहां पर सूर्य प्रकाश करसकता है न वहां चंद्र प्रकाश करसकता है न वहां तारागण प्रकाश करसक्ताहै न वहांपर विद्युतादि नाम विजुलीआदि प्रकाश करसक्ती है यह अग्नि उसी के प्रज्वलित करने से प्रकाशित होती है अर्थात् ब्रह्म अपने प्रकाशस्वरूप है ॥ ४३ ॥

प्राप्यसर्वज्ञतांकृत्स्नां ब्रह्मण्यंपदमद्वयम् ॥ अनापन्नादिमध्यान्तं किमतःपरमीहते ॥ ४४ ॥

अर्थः—सम्पूर्ण सर्वज्ञताको पायके अद्वैत और आदि मध्य अन्त को अप्राप्तहुये और ब्रह्मभावरूप पदको पायके इसके पश्चात् क्या चेष्टा करता है ॥ ४४ ॥

प्रकृत्याकाशवज्ज्ञेयाः सर्वधर्म्माअनाद
यन् ॥ विद्यतेनहिनानात्वं तेषांकचनकिञ्च
न ॥ ४५ ॥

सर्वधर्म स्वभावसे आकाशवत्है और अनादिहै और
जानने योग्यहै तिनका नानात्व कहींभी कुछ विद्यमान
नहीं अर्थात् परमार्थ से तो सर्वधर्म कहिये आत्मा स्वभाव
से सूक्ष्म निरंजन और सर्वगतपने विषे आकाशवत्है ॥
आकाशवत् सर्व्वगतःसनित्यः ॥ और अनादि कहिये
व्यवधान से रहित नित्यहै इसप्रकार मुमुक्षुओं करके जा-
नने योग्य है और तिनका नानात्व कहीं भी अर्थात् अ-
णुमात्र भी विद्यमान नहीं अर्थात् एक अद्वैत परिपूर्ण
आत्माविषे एक अणुमात्र भी नानात्व नहीं ॥ ४५ ॥

आदिबुद्धाःप्रकृत्यैव सर्व्वेधर्म्मास्सुनि
श्चिताः ॥ यस्यैवंभवतिशांतिःसोऽमृतत्वाय
कल्पते ॥ ४६ ॥

अर्थः—सर्वधर्म कहिये आत्मा स्वभावसेही आदिविषे
नित्यहै अर्थात् जैसे नित्य प्रकाशस्वरूपहै तैसेही नित्य
बोधस्वरूप है जिसके ऐसे शान्ति होती है सो अमृतभाव
के अर्थ समर्थ होताहै ॥ ४६ ॥

नसन्दृशेतिष्ठतिरूपमस्यनचक्षुषापश्य
तिकश्चनैनम् ॥ हृदामनीषामनसाभिकल्पते
यएतद्विदुरमृतास्तेभवन्ति ॥ ४७ ॥

अर्थः—न उसका कोई रूप देखसक्ताहै न उसको कोई नेत्रोंके द्वारा देखसक्ताहै हृदय और मनकेसाथ जिसआदमीने विचारकरलियाहै वह अमृत होगयाहै अर्थात् सत्शास्त्र और सत्संगकरके जिसने ब्रह्मकाविचारकियाहै वह अमृत होगया अर्थात् जन्ममरणसे छुटजाताहै ४७॥

अशब्दस्पर्शरूपमव्ययंतथारसंनित्यंग
न्धवच्चयत् ॥ अनाद्यनन्तंमहतंपरध्रुवंनचा
य्ययंमृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥ ४८ ॥

अर्थः—वह ब्रह्म शब्द स्पर्शवाला रूपवाला नहींहै अव्ययं अर्थात् मरता जन्मता नहीं और रसवाला भी नहीं और नित्यहै और गन्धवालाभी नहीं याने उसको गन्ध भी स्पर्श नहीं करसक्ता वह अनादि है और अनन्तहै याने सर्वव्यापक है और सब में श्रेष्ठहै और परध्रुवं अर्थात् उसका कोई पार नहीं है इस माफिक जिसने उसका विचार कियाहै वोमृत्युके मुखसे बचजाताहै अर्थात् जन्म मरणसे रहित होजाताहै ॥ ४८ ॥

निषिध्यनिखिलोपाधीन्नेतिनेतीतिवाक्यतः ॥ विद्यादैक्यंमहावाक्यैर्जीवात्मपरमात्मनोः ॥ ४९ ॥

अर्थः-अपरोक्षरूपसे जो आत्माके चैतन्यस्वरूपकाज्ञान है वह सामान्यज्ञानहोनेसे मुक्तिका साधन नहीं है किन्तु महावाक्योंसे उत्पन्न जो जीव और ब्रह्मकी एकता विशेष ज्ञानहै वहही मुक्ति का साधनहै अर्थात् नेतिनेति इसवाक्यसे सम्पूर्ण उपाधियों का निषेध (त्याग) करके और तत्त्वमसि आदि महावाक्यों के द्वारा जीवात्मा और परमात्मा की एकता का निश्चयकरै अर्थात् ॥ सरासआदेशोनेतिनेतीत्यतन्निरसनम् ॥ वह यह उपदेशहै इसप्रकार की श्रुतियोंके वचनों से अतत् कहिये आत्मासे भिन्नका निरसन (त्याग) करै अर्थात् आत्मासे भिन्नको जड़ और अनित्य समझे इस व्याससूत्रके अनुसार सम्पूर्ण समष्टि व्यष्टिरूप उपाधिस्थूल सूक्ष्मरूप वा कार्यकारणरूप नाम रूपात्मक जगत् अनात्म अर्थात् अनित्य और जड़ जान कर निषेध (अनात्मजपदार्थोंका त्याग) करे और तिन सम्बन्धों सहित "तत्त्वमसि, अयमात्माब्रह्म, प्रज्ञानंब्रह्म अहंब्रह्मास्मि" इनवेदोंकेमहावाक्योंकरके जीवात्मा और

परमात्मा की एकरूपता को निश्चयपूर्वक जानें तिस जानने के ज्ञानकोही मुक्तिका साधन और तत्त्वज्ञान कहते हैं ॥ ४९ ॥

आत्मनोविक्रियानास्तिबुद्धेर्बोधोनजात्विति ॥ जीवःसर्वमलंज्ञात्वा कर्त्ताद्रष्टेतिमुह्यति ॥ ५० ॥

अर्थः—आत्मा सर्वप्रकारके विकारोंसेरहित (निर्विकार) है सोई श्रुति में भी कहा है कि ॥ निर्गुणंनिष्क्रियंशान्तं निरवद्यंनिरंजनम् ॥ निर्गुण क्रियारहित शान्तस्वरूप निष्पाप और निरंजन अर्थात् निर्मलहै और गीताकेविषे भी कहाहै कि ॥ अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ॥ यह आत्मा अव्यक्त और अचिन्त्य तथा निर्विकारहै और बुद्धिके विषे कदाचित् ज्ञानहोताही नहीं क्योंकि बुद्धि जड़स्वरूप मायाका कार्यहोनेसेजड़है परन्तु अन्तःकारणावच्छिन्ना अर्थात् अन्तःकरणोपाधिक चेतन की चेतनता करके देह इन्द्रिय अन्तःकरण आदि सम्पूर्ण जड़ पदार्थ चैतन्यात्मक प्रतीत होनेलगते हैं सो बुद्धि के कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि धर्मोंकोजीवात्मा अन्तःकरण और आत्मा की एकता के भ्रमसे आत्माके धर्म्म मानलेताहै

सो मिथ्याभ्रमहै आत्मा तो सर्वदा निर्विकार और सच्चिदानन्दस्वरूपहै ॥ ५० ॥

अजेष्वजमसंक्रान्तं धर्म्मेषुज्ञानमिष्यते ।
यतोनक्रमतेज्ञानमसङ्गंतेनकीर्त्तितम् ५१ ॥

अर्थः—अजन्मा धर्मों विषे अजन्मा ज्ञानहै न जानने वाला अंगीकार करते हैं जाते ज्ञान गमन करता नहीं ताते असंग कहाहै अर्थात् जिस करके सूर्य विषे ऊष्मता और प्रकाशवत् अजन्मा कहिये अचलधर्म्म कहिये आत्मा विषे अजन्मा कहिये अचल ज्ञान अंगीकार करते हैं क्योंकि आत्मा ज्ञानस्वरूपहै ॥ ५१ ॥

यथाभवतिबालानां गगनंमलिनंमलैः ।
तथा भवत्यबुद्धीनामात्माऽपि मलिनोमलैः ॥ ५२ ॥

अर्थः—जैसे बालकों को आकाश मलकरके मलिन होता है अर्थात् जैसे लोकविषे विचार शून्य अविवेकी बालकों को परमशुद्ध जो आकाशहै सो मेघ रजधूमादिमल करके मलिन (मैलवाला) भासता है परन्तु आकाश के स्वरूप स्वभाव के जानने वाले जो विवेकी पुरुषहैं तिनको आकाशमलवाला प्रतीत होता नहीं

अर्थात् जिन पुरुषोंको आकाशके यथार्थ स्वरूप स्वभाव का ज्ञानहै तिनको आकाशमें धूम धूलि आदिक मलके होते संतेभी आकाश मलिन प्रतीतहोके जैसाहै तैसाही प्रतीत होताहै तैसे आत्मा भी अशुद्धियों को मलकरके मलिन होताहै ॥ ५२ ॥

क्रमतेनहिबुद्धस्यज्ञानंधर्मेषुतापिनः॥सर्वे धर्मास्तथाज्ञानं"तद्बुद्धेनभाषितम् ॥ ५३ ॥

अर्थः—अर्थात् जिस करके सन्ताप वाले कहिये सूर्य के तापवाले आकाश के तुल्य भेदसे रहित वा पूजाकरने योग्य बुद्धिमान् परमार्थदर्शी पण्डित का ज्ञान अन्य विषयरूप धर्मों विषे जाता नहीं किन्तु जैसे सूर्य विषे प्रकाश अभिन्नरूपसे स्थितहै तैसे आत्मरूप धर्मविषेही स्थितहै इस प्रकार अंगीकार करते हैं ताते आत्मा विषे मुख्यपनाहोने के योग्यहै ॥ ५३ ॥

अधिदैवमध्यात्मञ्चतेजोमयोऽमृतमयः पुरुषः पृथिव्याद्यंतर्गतोयोविज्ञातापर एवात्माब्रह्मसर्वमिति ॥ ५४ ॥

अर्थः—अधिदैव और अध्यात्म तेजोमय अमृतमय

पृथिवी आदिकों के अन्तर्गतजो विज्ञाता पुरुषहै सो परमात्माहीहै सर्व ब्रह्महै ॥ ५४ ॥

द्वयोर्द्वयोर्मधुज्ञानपरम्ब्रह्मप्रकाशितम्पृथिव्यामुदरेचैवयथाऽकाशःप्रकाशितः ५५ ॥

अर्थः—द्वयद्वय विषे परब्रह्म प्रकाश कियाहै मधुज्ञान विषे अर्थात् उक्तप्रकार दोनोंदोनों स्थानों विषे द्वैतके क्षय होने पर्यन्त परब्रह्मप्रकाशित किया है अर्थात् जिस विषे ब्रह्मविद्या नामक मधु अमृततत्त्व का मोदन होनेसे अर्थात् ब्रह्मविद्या को अमृतत्त्व मोक्ष परमानन्द की प्राप्तिका हेतु होने से मधु वा अमृत कहतेहैं और यही मुख्य अमृत है क्योंकि इसही करके जन्म मरणादि लक्षणवान् जीव सकारण मरण से रहित अमर अभय भावको प्राप्तहोता है (पृथिव्यामुदरे चैव यथाऽऽकाशःप्रकाशितः) नाम जैसे पृथ्वीविषे और उदरविषे आकाश प्रकाशित किया है जैसे लोक विषे पृथ्वीविषे और उदरविषे एकही आकाश अनुमानप्रमाण से प्रकाशित किया है तैसे मधु ब्राह्मण में पृथ्वी आदिकों विषे अधिदैव और शरीरादिकों विषे अध्यात्मरूप से परब्रह्मही प्रकाशित किया है ॥ ५५ ॥

नाकाशस्यघटाकाशो विकारावयवौय था ॥ नैवात्मनःसदाजीवो विकारावयवौत था ॥ ५६ ॥

अर्थः—जैसे आकाश का घटाकाश विकार और अवयव नहीं अर्थात् जैसे कुण्डलादिक सुवर्णके और बुद्बुदादि जलके विकार और शाखादि वृक्षके अवयव हैं तैसे घटाकाशादि महदाकाश के विकार अवयव नहीं और तैसे आत्माका जीव सर्व्वदा विकार और अवयव नहीं तैसेही परमार्थ से सत्यरूप महाकाशस्थानीय एक अखण्ड अद्वैत निराकार परब्रह्मसे अभिन्न आत्माका यह घटाकाशस्थानीय जीव सर्वदा उक्त दृष्टान्तवत् विकार नहीं और अवयवभी नहीं एतदर्थ अत्माके भेदका किया व्यवहार मिथ्याही है ॥ ५६ ॥

तिर्यगूर्ध्वमधःपूर्णंसच्चिदानन्दमद्वयम् ॥ अनन्तंनित्यमेकंयत्तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ५७ ॥

अर्थः—जो तिर्यक् कहिये पूर्व आदि चारों दिशाओं के विषे और ऊपर तथा नीचे सर्वत्र पूर्ण है जो अनन्त कहिये देशकाल वस्तुकृत परिच्छेदसे रहितहै नित्य कहिये सत्यहै और एक कहिये सजातीय विजातीयहै स्व·

गत भेदशून्य है वही ब्रह्म है ऐसा निश्चय करना इस प्रकार परमात्मा की परिपूर्ण नित्य आनन्द स्वरूपता करके परम पुरुषार्थता सिद्ध होती है ॥ ५७ ॥

मरणेसम्भवेचैव गत्यागमनयोरपि ॥
स्थितौसर्वशरीरेषुआकाशेनाविलक्षणः ५८

अर्थः-सर्व शरीरों विषे जन्म मरण गमन आगमन और स्थिति के हुये भी आकाश से अविलक्षण है अर्थात् घटाकाश के जन्म मरण गमन आगमन अरु स्थितिवत् सर्व शरीरों विषे आत्माको जन्म मरण गमन आगमन और स्थिति के हुये भी आत्मा आकाश से अविलक्षण (आकाशके तुल्य) प्रतीत करने को योग्यहै अर्थात् घटाकाशजोहै सो घटकी उत्पत्ति होने से उत्पन्न हुयेवत् घटके ध्वंसहुये ध्वंसहुयेवत् और घटके गये गयेवत् और घटके आये आयेवत् और घटके स्थितहुये स्थित हुयेवत् इत्यादि प्रकार घटाकाशविषेजो उत्पत्तिआदि प्रतीत होवे है सो घटरूप उपाधिके सम्बन्धसे होवेहै परन्तु घटसे पृथक् दृष्टिकरके केवल आकाशकोही अनुभव दृष्टिसे देखिये तो घटके वर्त्तमान कालमें भी आकाश उत्पत्ति विनाशादिकों से रहित अपने स्वरूप करके ज्योंका त्यों एकरस-

हीहै तैसेही आकाश से भी महासूक्ष्म परिपूर्ण एकरस आत्मा विषे जो जन्म मरण सुख दुःख और परलोकमें गमन पुनःआगमन इत्यादि प्रतीति होताहै सो शरीरादि संघातरूप उपाधि के सम्बन्धसे होताहै ॥ ५८ ॥

तद्युक्तमखिलंवस्तुव्यवहारस्तदन्वितः ।
तस्मात्सर्वगतंब्रह्मक्षीरेसर्पिरिवाखिले ५९ ॥

अर्थः–जिस प्रकार घृत सम्पूर्ण दुग्धके विषे अभेदरूप करके व्याप्त रहताहै तिसी प्रकार घटपटादि सम्पूर्ण वस्तु ये सच्चिदानन्द ब्रह्मकी सत्ताकरके युक्तहोकर अस्ति भाति प्रियरूप करके प्रकाशमान होती है और तिसब्रह्म की सत्ताकरकेही वचन दान गमन विसर्ग आनन्दक्रिया आदि सम्पूर्ण व्यवहार सिद्ध होते हैं सो भगवान्ने भी कहाहै कि (सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्) अर्थात् सम्पूर्ण इन्द्रियों के गुणोंका प्रकाशक और सम्पूर्ण इन्द्रियों करके रहित वह ब्रह्महीहै तिस कारण सम्पूर्ण वस्तुओं के विषे ब्रह्म अभेदरूप करके व्याप्तहै ब्रह्मकी स्थिति का कोई देश काल नियतरूप से नहीं है किन्तु ब्रह्म सर्वव्यापकहै ॥ ५९ ॥

हृदाकाशोदितोह्यात्माबोधभानुस्तमोऽपनु

त् । सर्वव्यापीसर्वधारोभातिसर्वप्रकाश
ते ॥ ६० ॥

अर्थः—इसप्रकार जीवात्मा और परमात्मा की एकता के ज्ञान से शुद्ध हुआ हृदयरूपी आकश में उदित हुवा निर्मल बोधस्वरूप सूर्य अज्ञानरूपी अन्धकार को नष्ट करता है तहाँ शङ्का होती है कि हृदयाकाश के परिच्छिन्न होनेसे तहाँ उदय को प्राप्त होनेवाला आत्मा भी परिच्छिन्न (नाशवान्) होजायगा तहाँ कहते हैं कि आत्मा तौ सर्वव्यापी है और सर्वाधार अर्थात् अज्ञान का कार्य जो जगत् तिसका अधिष्ठानरूपहै अर्थात् भ्रमसे प्रतीयमान हृदयाकाश सर्वव्यापक आत्माका हानिकारक नहीं होसकता क्योंकि आत्मा सबका प्रकाशक नित्यस्वरूप है ॥ ६० ॥

अनिश्चितायथारज्जुरन्धकारेविकल्पि
ता ॥ सर्पधारादिभिर्भावैस्तद्वदात्माविक
ल्पितः ॥ ६१ ॥

अर्थः—जैसे अन्धकार विषे अनिश्चितहुई रज्जु सर्प और जलधार आदिक भावकरके विकल्प को प्राप्त होता है अर्थात् जैसे लोकविषे मंद अन्धकार विषे रही

वस्तु अहं अमुकवस्तुहीहै इसप्रकार अपने स्वरूपसे अ-निश्चय को प्राप्तहुई सो क्या सर्प है वा जलधाराहै वा वक्रदंड है वा भूमि की दरार है इत्यादि प्रकारसे सर्प धा-रा आदिक भाव करके अनेकप्रकार से विकल्प को प्राप्त होवे है अर्थात् रज्जुविषे सर्प और थाणु (ठूंठ) विषे जो पुरुष की भ्रान्ति होती है सो मन्द अन्धकार के स-मय होती है घन अन्धकार में और स्पष्टप्रकाश में नहीं क्योंकि जिस काल में रज्जु के सामान्य अंश सर्पवत् वक्राकार की प्रतीति और विशेष अंश त्रिवली ऐठन की अप्रीति होतीहै तिसकाल में सर्पादि भ्रान्ति हो-तीहै ॥ ६१ ॥

निश्चितायांयथारज्ज्वांविकल्पोविनिव र्त्तते ॥ रज्जुरेवेतिचाद्वैतंतद्वदात्मविनि श्चयः ॥ ६२ ॥

अर्थः—जैसे ये रज्जुही है ऐसे रज्जु के निश्चयहुये विकल्प सर्वथा निवृत्त होता है अर्थात् यह रज्जुहीहै इ-सप्रकार रज्जुके निश्चय होनेसे तिसके अज्ञान की नि-वृत्ति उत्पन्न हुवा जो सर्पादि रूप विकल्प सो सर्वथा नि वृत्त होता है और रज्जुमात्र अवशेषरहती है (तद्वदा

त्मविनिश्चयः) तैसे आत्माविषे निश्चय प्राप्त होता है अर्थात् जैसेही जब आत्मा विषे श्रुति वाक्यानुसार निश्चय प्राप्त होता है तब आत्माकी अविद्या करके कल्पित जे जीवादिक विकल्प तिनकी अशेष निवृत्ति से एक अद्वैत आत्मतत्त्वही परिअवशेष रहता है। भावार्थ कहते हैं जैसे रज्जुरेवेति रज्जुहीहै इस प्रकार निश्चयके होने से सर्व विकल्पों की निवृत्ति के होने से रज्जुही अद्वैत है इसप्रकार नेति नेति ॥ नइति नइति ॥ सूक्ष्म भी नहीं स्थूल भी नहीं कार्य भी नहीं कारण भी नहीं मूर्त भी नहीं अमूर्त भी नहीं इत्यादि इस सर्व संसार के धर्म से रहित वस्तु के प्रतिपादक शास्त्र से जनित ज्ञानरूप आकाशका किया जो यह आत्मा का निश्चय है सोई ॥ आत्मैवेदं सर्वमपूर्वमनन्तरमबाह्यं सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः । अजरोऽमरोऽमृतोऽभयएवाद्वय इति॥ आत्मा ही यह सर्व है = अपूर्व है = अनपरहै अन्तर है अबाह्य है बाह्याभ्यन्तरके सहितहै और जन्मरहित अजहै अजरहै अमरहै अमृत (रोगरहित) है अर्थात् जन्मादि षड्भाव विकार रहित है अभय है इसप्रकार अपने आप आत्माका दृढ निश्चय है सोई अद्वितीय परिशेष रहता है पुनः द्वैत सर्वही निवृत्त होताहै ॥ ६२ ॥

प्राणादिभिरनन्तैश्च भावैरेतैर्विकल्पितः ॥ मायैषातस्यदेवस्ययया सम्मोहितः स्वयम् ॥ ६३ ॥

अर्थः-प्राणादि अनन्त भावों करके विकल्पको प्राप्त हुआ है यह उस देवकी मायाही है अर्थात् जब निश्चय करके सर्व संसार धर्मरहित आत्मा एकहीहै तब इन संसाररूप प्राणादि अनन्तभाव से कैसे विकल्पको प्राप्त होता है जहां इस प्रकार संशय हैं तहां कहते हैं यह उस आत्मरूप देवकी मायाहै जैसे मायावी पुरुष करके प्रेरणाको प्राप्तहुई जो उसकी माया सो अतिशय निर्मल आकाश तिसको पुष्पपत्र सहित वृक्षों करके पूर्ण हुयेवत् पूर्ण करे है तैसे यह आत्मदेवकी माया भी है और जैसे इन्द्रजाली की मायासे लौकिक द्रष्टाजन उस मायाकृत मोहसे उस मायाकेही वशहुये देखते हैं तैसे अपनी मायासेही यह आत्मा अपने चिदाभासरूप से आप भी मोहको प्राप्त होताहै एतदर्थ मोहरूप कार्यद्वारा आत्मा विषेही माया का ज्ञान होता है अर्थात् मूलाज्ञान की शक्ति जो शुद्धमाया तद्विशिष्ट आत्माको मायाके कार्य मोह करके अपने विषे माया का ज्ञान होताहै और सर्व

शब्दके अर्थकी साम्यता जो माया तिसका ज्ञाता होनेसे उसको सर्वज्ञ कहतेहैं और यो माया से रहित और माया का आश्रय शुद्ध अविशिष्ट अपने सत्यस्वरूप तिसको स्वरूपसेही जानता है ताते ईश्वरहै और अज्ञान की द्वितीय शक्ति मलिन अविद्या अद्विशिष्ट जीव अविद्या के कार्य मोहरूप निमित्तसे उसको अविद्या का ज्ञानहोताहै कि मुझ विषे अविद्या वा मायाहै और तिससे पृथक् अपने अशुद्ध स्वरूपको विना आचार्य के उपदेशके जानता नहीं ताते जीवहै और एतदर्थही श्रुति कहती है कि ॥ आचार्यवान् पुरुषो वेद ॥ और माया और अविद्यारूप उपाधि के अभावसे उभयविशिष्ट चैतन्य आत्माकी अविशिष्ट ज्ञप्तिमात्र तत्त्वविषे एकताहै परन्तु आचार्यके उपदेश द्वारा सम्यक् प्रकारके आत्मज्ञान विना मायाऔर अविद्या कीनिवृत्तिहोवेनहीं ॥ तथाचममभाया दुरत्यया ॥ मेरी माया दुःखसे तरने योग्यहै इस गीतोक्ति से भगवान् ने भी मायाको मोहकी हेतुता कहीहै ॥ ६३॥

कार्यकारणता नित्यमास्ते घटमृदोर्यथा ॥ तथैवश्रुतियुक्तिभ्यां प्रपञ्चब्रह्मणोरिह ॥ ६४ ॥

अर्थः—जैसे सदा घट और मृत्तिका का कार्य कारण भाव देखने में आवै है तिसी प्रकार श्रुतियों से और युक्तियों से प्रपंच अर्थात् जगत् और ब्रह्मका कार्य कारण भाव जानाजाय है ॥ ६४ ॥

गृह्यमाणेघटे यद्वन्मृत्तिकायाति वै बलात् ॥ वीक्ष्यमाणे प्रपञ्चेपि ब्रह्मैवाभातिभासुरम् ॥ ६५ ॥

अर्थः—जैसे घटके विषय में विचार करते करते अन्तमें मृत्तिकाही निश्चय होयहै इसी प्रकार इस संसारके विषय में विचार करते करते विना प्रमाणों के प्रकाशवान् ब्रह्म-ही प्रतीत होयहै ॥ ६५ ॥

सर्पत्वेन यथारज्जूरजतत्वेनशुक्तिका ॥ विनिर्णीता विमूढेनदेहत्वेनतथात्मता ६६ ॥

अर्थः—जिस प्रकार अज्ञानी पुरुष रज्जुको सर्पमान-लेयहै और सीपीको चांदी मानलेय है इसी प्रकार आत्मा को देह अज्ञानीकी कल्पनारूप निर्णयकरैहै ६६ ॥

घटत्वेन यथापृथ्वी पटत्वेनैवतन्तवः ॥ विनिर्णीता विमूढेनदेहत्वेन तथात्मता ६७॥

अर्थः—जैसे अज्ञानी पुरुष मृत्तिका को घटमानै है

और तन्तुओं को पटमाने है तिसी प्रकार आत्माको देह-रूप निर्णय करै है ॥ ६७॥

पीतत्वंहियथाशुभ्रेदोषाद्भवातिकस्यचित् ॥ तद्वदात्मनिदेहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः ॥ ६८ ॥

अर्थः—जिस प्रकार किसी पुरुषको पित्तदोषसे कमल वायु होजाय है और श्वेत वस्तु भी पीली मालूम होने लगैहै तिसी प्रकार अज्ञान वशसे इस आत्मामें देह का ज्ञान है ॥ ६८ ॥

चक्षुर्भ्यांभ्रमशीलाभ्यां सर्वंभाति भ्रमात्मकम् ॥ तद्वदात्मनिदेहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः ॥ ६९ ॥

अर्थः—जिस प्रकार किसी पुरुषके नेत्रोंमें भ्रम होयहै अर्थात् घूमने की बीमारी होयहै उस पुरुषको सम्पूर्ण पदार्थ घूमतेहुये मालूम होयहैं तिसी प्रकार अज्ञानवश से इस आत्मामें देहका ज्ञान है ॥ ६९ ॥

अज्ञानांसमतांविद्यात्समेब्रह्मणिलीयते॥ नोचेन्नैवसमानत्वमृजुत्वंशुष्कदृणवत्॥७०॥

अर्थः—सब प्राणियों में समदृष्टि करके जो समान ब्रह्म में लीन होय है सो देह साम्य कहावैहै सूखेहुये काष्ठकी तरह समान वस्तुको समता नहीं कहैहैं ॥ ७० ॥

अदृश्यंभावरूपंच सर्वमेवचिदात्मकम्॥ सावधानतयानित्यं स्वात्मानंभावयेद्बुधः ॥ ७१ ॥

अर्थः—ज्ञानी पुरुष सदाही सावधान होकर अदृश्य दृश्य सम्पूर्ण संसारको चिन्मय ब्रह्म चिन्तनाकरे ॥७१॥

दृश्यंह्यदृश्यतांनीत्वाब्रह्माकारेणचिन्तयेत् ॥ विद्वान्नित्यसुखेतिष्ठेद्धियाचिद्रसपूर्णया ॥ ७२ ॥

अर्थः—दृश्य वस्तुको अदृश्य की तरह करके ज्ञानी पुरुष ब्रह्मस्वरूपकी चिन्तनाकरै तिसचिन्मयज्ञानके होने से विद्वान् पुरुष चिन्मयरससे भरीहुई बुद्धिसे नित्यसुख से अस्थान करै ॥ ७२ ॥

भयंद्वितीयाभिनिवेशतः स्यादीशादपेतस्य विपर्ययोस्मृतिः ॥ तन्मायायातोबुध आभजेत्तंभक्त्यैकयेशंगुरुदेवतात्मा ॥ ७३ ॥

अर्थः—द्वैतभाव अपना और विराना जानने से सर्व स्थानमें भय होता है क्योंकि आत्मा सबमें एकै है दूसरी बुद्धि होजाती है आत्मा को दूसरा मानने से कि हम और हैं यह और है तब यह मत अज्ञानियों का है यातें भक्ति करके एक परमात्मा सब से श्रेष्ठ आत्मदेवस्वरूप जगत् में ठहरा देह के भीतर बाहेर घट पटते महान् महान् आकाशकी नाईं ॥ तमीश्वरं भजेत् ॥ विचारो अर्थात् एक आत्मा सब में देखौ तौ अभय को प्राप्त होवो ॥ ७३ ॥

आत्मानमन्यंचसवेद विद्वानपिप्पलादोनतुपिप्पलादः ॥ योऽविद्ययायुक्तसतुनित्यबद्धोविद्यामयोयःसतुनित्यमुक्तः ॥ ७४ ॥

अर्थः—जीवात्मा परमात्मा दोनों में पीपरवृक्षरूपी देहमें फलरूपी कर्मको फलनहीं मांगे सो ज्ञानी अपनेको और ईश्वरको जानताहै सो ज्ञानयुक्त मुक्तहैं जो कर्मफल चाहताहै सो अपने को और ईश्वरको नहीं जानता अज्ञान से युक्त नित्यबद्धहै ॥ ७४ ॥

खंवायुमग्निंसलिलं महींच ज्योतींषिसत्त्वानिदिशोद्रुमादीन् ॥ सरित्समुद्राश्चहरेः

शरीरंयत्किंचभूतंप्रणमेदनन्यः ॥ ७५ ॥

अर्थः—किसरीति से एक आत्मा देखै सुनै आकाश वायु अग्नि जल भूमि नक्षत्र दिशा वृक्ष नदी समुद्र इत्यादि रूप सब ईश्वर का शरीरहै ऐसा जानकर सब से नम्र रहै किसी को दुःख न देवे आत्मरूपी ईश्वर को प्रणाम करै ॥ ७५ ॥

यद्दृष्ट्वानपरंदृश्ययद्भूत्वानपुनर्भवः ॥
यज्ज्ञात्वानपरंज्ञानंतद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ७६

अर्थः—जिस परब्रह्मके देखनेसे (साक्षात्कारहोने) पर और कुछ देखना नहीं है क्योंकि अधिष्ठानरूप ब्रह्मका साक्षात्कार होनेपर सम्पूर्ण कल्पित जगत्का साक्षात्कार होजाताहै और जिस ब्रह्मका स्वरूप होकर अर्थात् जिस ब्रह्मकेसाथ अभेदको प्राप्तहोकर फिर संसार में जन्म नहीं होताहै सोई श्रीकृष्ण महाराजने गीतामें अर्जुन के प्रति कहाहै कि ॥ यद्गत्वाननिवर्त्तन्तेतद्धामपरमंमम ॥ अर्थात् हे अर्जुन ! जिसधामको प्राप्तहोकर पुरुष फिर नहीं लौटता है वही मेरा परमधामहै और सम्पूर्णके उपादान कारण-रूप जिस ब्रह्मको जानकर अन्य किसी पदार्थ के जानने

की इच्छा नहीं रहती है क्योंकि कारणकी सत्ता से कार्य की सत्ता भिन्न नहींहोती है सो कारणरूप ब्रह्मके जानने से सम्पूर्ण कार्य जानाहुआ होजाताहै इसप्रकार वर्णन करेहुये कोही परब्रह्म रूप जाननाहै ॥ ७६ ॥

दैवाधीनशरीरेऽस्मिन्गुणाभावेन कर्मणा ॥ वर्त्तमानोऽबुधस्तत्रकर्त्तास्मीतिनिबध्यते ॥ ७७ ॥

अर्थः—क्योंकि प्रारब्धके आधीन शरीरहै जैसा कर्म पूर्व में कियाहै तैसा सुख दुःख इन्द्रियां भोग करती हैं देह में टिकके गुणोंके अनुसार तिन कर्मोंमें वर्तमान राग से युक्त अज्ञानी अपना मानता कि यह कर्म हमने किया सो बंधजाता है ॥ ७७ ॥

दैवीसंपद्विमोक्षाय निबन्धायासुरीमता ॥ माशुचःसंपदं दैवीमभिजातस्य पाण्डव ॥ ७८ ॥

अर्थः—जिसके हृदय मनमें देवका वास रहताहै सो मोक्षार्थ कर्म यज्ञादि करताहै जिसके आसुरी संपदा बसी है सो जन्म मरणको प्राप्तहोताहैदुःख भोगताहै ७८ ॥

समाधौक्रियमाणेतु विघ्नान्यायान्तिवै बलात् ॥ अनुसन्धानराहित्यमालस्यं भोग लालसम् ॥ ७६ ॥ लयस्तमश्चविक्षेपोरसा स्वादश्चशून्यता ॥ एवंयद्विघ्नबाहुल्यंत्या ज्यं ब्रह्मविदाशनैः ॥ ८० ॥

अर्थः—समाधि साधनकाल में अनेक प्रकारके विघ्न आनके वलसे निरोधकरैंहैं कि वह विघ्न यहहैं कि अनुसंधान राहित्य अर्थात् किसी प्रकार अनुसन्धान नहीं रहना आलस भोग लालसा लय अर्थात् निद्रातम अर्थात् कार्याकार्य का अविवेक विक्षेप (विषयानुराग) रसास्वाद अर्थात् मैं बड़ा धन्यहूं इस प्रकार आनन्दका अनुभवकरना शून्यता अर्थात् रागद्वेषादिक से चित्तकी विकलता इसप्रकार विघ्नोंके समूह को ब्रह्मवेत्ताओंको शनैः शनैः त्याग करना योग्यहै ॥ ७६ । ८० ॥

भाववृत्त्याहिभावत्वं शून्यवृत्त्याहिशून्यता ॥ ब्रह्मवृत्त्याहिपूर्णत्वंतथापूर्णत्वमभ्यसत् ॥ ८१ ॥

अर्थः—जिसके चित्तकी वृत्ति घटादिभाव पदार्थ में

जायहै उसको घटादि पदार्थोंका प्रकाश होयहै जिसके चित्तकी वृत्ति शून्यताको आश्रय करैहै उसका चित्त शून्यमय होयहै इसीप्रकार जिसके चित्तकी वृत्ति चैतन्यस्वरूप ब्रह्ममें जायहै उसको पूर्णब्रह्मका लाभ होयहै इस से पुरुषको जिसप्रकार पूर्णब्रह्मत्वका लाभ होय उसतरह का अभ्यास करके लाभ उठाना योग्यहै ॥ ८१ ॥

इति ईश्वरदीपिका समाप्तिमगात् ॥

ॐ

शिक्षा ॥

साधन द्वादश कहिये मोक्षके जो वारे साधन तिन करके सम्पन्न अर्थात् युक्त जो अधिकारी पुरुष तिनके मोक्षका साधन भूत कहिये मोक्षका कारण जो तत्त्व वि· वेक अर्थात् पृथिवी–जल–तेज–वायु–आकाश रूप पञ्च महाभूत उनके साथ एकता कहिये पञ्चमहाभूतों-के विषे अभिन्नरूपसे प्रतीत होनेवाला जो सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म जगत् का उपादान कारण है वही तत्त्वोंकी एकता से जीव भावको प्राप्त होजाता है उस पञ्च म-हाभूत का पृथक् ज्ञान जिस रीति के द्वारा होजाता है उस रीति का इस ईश्वरदीपिका ग्रंथके विषे वर्णन किया है और कुछ करेंगे ॥

इनबारह साधनोंमेंसे चारकाव्याख्यान नीचे कियाजाताहैः-

दो० चिन्तनीय द्वै वस्तुहैं सदा जगत के बीच ।
ईश्वरके पदपद्मयुग और आपनी मीच ॥

करें बुराई आपसों कैसीहू कोउ लोग ।
आपकरे भल और सँग दोहू भूलनयोग॥

अर्थः—इनचारमें से दो बातें याद रखने के लायक हैं और दो बातें भूल जानेके लायकहैं याने एकतोपूर्ण ब्रह्म आत्मस्वरूप को याद रखना चाहिये। और दूसरे अपनी मृत्युको याद रखना चाहिये क्योंकि मृत्युकोयाद रखने से बुरे काम न होंगे इसलिये इन दो बातोंकोयाद रखना जरूरी है और तीसरे यहहै कि अगर कोई अपने साथ बुराई करे तो उसको भूलजाना चाहिये और चौथी बात यहहै कि तुम अगर किसीके साथ भलाई करो तो उसको भी भूलजाओ॥

बयान साधनका॥

और फिर चारबातें साधनकरनेकीहैं॥ पहलासाधन यहहै कि नित्यअनित्यका विचार याने नित्य पदार्थ क्या है और अनित्य पदार्थ क्याहै नित्य पदार्थ उसको कहते हैं कि जो चीज़ हमेशा क़ायम रहै याने भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों कालोंमें एक समान रहै अनित्य याने जगत् और जीव जो आजहै और कल नहीं है॥

दूसरा साधन वैराग्य है याने यह लोक और परलोक इन दोनों लोकोंके फलों से विरक्त रहना ॥

तीसरा साधन शम दम उपरति तितिक्षा श्रद्धा समाधान इनके मुताबिक चलना ॥ देखो टीका श्लोक ऊपर नं० ४ । ६ तक ॥

चौथा मुमुक्षुत्व याने इच्छा रखनी मोक्षकी इसके सिवाय और इच्छा नहीं रखनी चाहिये ॥

इसके बाद चार बातें जो करने की हैं उनका बयान नीचे कहा जाताहै ॥

शम ॥

शम=सन्तोष=विचार=सत्संग उसको कहते हैं कि संसार के इष्ट अनिष्ट में चलायमान न होवे न किसीका रंज करै और न किसीसे कुछ सवाल करै उपाधिसे रहित परम शान्तरूप अमृतकरके पूर्णरहै वो पुरुष नानाप्रकार की चेष्टा करता हुआ दिखलाई देताहै लेकिन हकीकत में कुछ नहीं करताहै जहां उसके मनकी वृत्ति जाती है वहां आत्मसत्ता भासती है जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा अमृत करके पूर्ण रहताहै उसी तरह समदृष्टिवाला पुरुष

ज्ञान करके पूर्ण रहता है याने भूत भविष्यत् वर्तमान तीनोंकालमें एक समान रहताहै ॥

सन्तोष ॥

अप्राप्त वस्तु की इच्छा न करै और प्राप्तहुई इष्ट अनिष्टमें रागद्वेष न करै जिसकी त्रिलोकी के राज्य मिलने से इच्छा पूर्ण नहीं हुई वह दरिद्री है और जो निर्धनहै और संतोषवालाहै वह सबका ईश्वरहै इसके ऊपर एक दृष्टान्तहै कि एक गुरु और एक चेला थे वे लोग हमेशाह जंगलही में रहाकरते थे चेलेने कभी वस्तीका मुंह तक नहीं देखा था यहांतक कि उसको स्त्री पुरुष का भी ज्ञान न था कि स्त्री किसको कहते हैं और पुरुष किसको कहते हैं एक रोज गुरुने चेलेसे कहा कि बेटा वस्ती में जाकर आज भिक्षा मांगलेआओ चेला गुरुकी आज्ञा पातेही वस्तीमें गया और एक गृहस्थके दरवाजेपर जाकर भिक्षाके लिये सवाल किया उस घरमें सिर्फ मा और बेटी रहती थीं माने बेटीसे कहा कि साधुको भिक्षा देआवो बेटी भिक्षा देने के वास्ते गई उसवक्त इत्तिफाकसे उस लड़कीके छाती का कपड़ा खुलाथा साधुने उसके दोनों स्तनों को देखकर रोना शुरू किया और भिक्षा भी नहीं

लिया लड़की यह सब हाल देखकर अपनी मातासे जा बोली कि साधु रोरहा है और भिक्षा नहीं लेता तब माताने आकर साधुसे पूछा कि महाराज आप क्यों रोते हो साधुने जवाब दिया कि ऐ माता! इस लड़की की छातीपर जो दो फोड़े हुयेहैं उनको देखकर मैं रोता हूं क्योंकि एकवक्त मेरे पावोंमें भी इसीतरह का एक फोड़ा निकला था उससे मुझको बड़ी तकलीफ़ हुईथी सो मैं देखताहूं कि मेरे एकही फोड़े से इस क़दर तकलीफ़ थी कि जिसका बयान नहीं होसक्ता तो जब इसके दो फोड़े हैं तो किस कदर दरद होता होगा माने तब साधु के आंशू पोंछे और बोली कि महाराज! यह फोड़े नहींहैं यह तो लड़काओं के दूध पीने के प्यालेहैं तब साधुने अचम्भेमें आकर पूछा क्या इसके बालक हुआहै माने कहा कि अभी नहीं परन्तु आगे पैदा होगा तब इन्हीं प्यालियाओं से दूध पीवेगा साधु बोला कि लड़के के पैदा नहीं होने के पहिले दूध के प्याले तय्यार होगये मैं तो पैदा होचुकाहूं क्या मेरे वास्ते खाना नहींहै इस पर वहांसे एकाएक गुरुके पास चलागया और उनको सब हाल सुनाकर कहने लगा कि लड़के के पैदा न होनेके पहलेही दुग्धकी प्यालियां तय्यारहोगईं तो क्या आपको

इतना संतोष नहीं है जो मुझे भिक्षा मांगने के वास्ते वस्तीमें भेजा था गुरुने कहा कि बेटा भिक्षा मांगने के वास्ते मैंने तुमको नहीं भेजा था बल्कि तुम्हारे संतोष की परीक्षा करनेको भेजाथा संतोष ऐसी चीजहै कि इस से परमानन्दता प्राप्त होती है ॥

विचार ॥

उसको कहते हैं कि नित्य अनित्यको देखना बल बुद्धि और तेज और चौथे यहहै कि जो बल और बुद्धि के जरिया से प्राप्त हुआ पांचवें यह कि जो प्राप्ति होती है सो विचारके द्वारा होती है इसका मतलब यहहै कि इन्द्रियोंका जीतना और बुद्धिसेआत्मा व्यापनी औरतेज पदार्थ का आना यह विचारसे होताहै जिसको जोकुछ सिद्धताहोतीहै सो विचार करके होतीहै इसके ऊपर एक दृष्टान्तहै एक फ़क़ीर किसी बादशाहके बाग़में गया और अपना झोली तोंबा बादशाही तख्त पर रखकर बैठगया सामके वक्त जब बादशाह बग़ीचेमें सैरकरनेको आया तो फ़क़ीरको देखकर बड़ा क्रोधितहुआ और बोलाकि अरे अहमक ! तू नहीं जानता कियह मेरा बादशाही तख्तहै फ़क़ीर बोला बाबा इतना गुस्सा क्यों करताहै मैं तो इसको

सराय समझकर बैठाहूं यह सुनकर बादशाहको बेमी-गुस्साहुआ तब फकीरने कहाकि सुनो बाबा यहतो बत-लाओ कियह बाग किसकाहै बादशाहनें जबावदिया कि हमारा है फ़क़ीर बोला कि बाबा तेरे पहिले यहां कौन रहताथा बादशाह ने कहाकि मेरा बाप रहता था फ़क़ीर बोला कि तेरे बापके पहिले यहां कौन रहता था बाद-शाहने कहा मेरा दादा रहता था इसी माफ़िक बाद-शाह अपनी सात आठ पीढ़ीतक का नाम लेगये तब फ़क़ीर बोला कि बाबा जिस घरमें मुसाफिरोंकी माफ़िक इतने आदमी रहरहकर चलेगये तो सराय नहीं तो फिर और क्याहै फ़क़ीरके इस जबाब पर बादशाहको विचार होगया कि हक़ीक़तमें फ़क़ीर ठीक कहताहै आखिरिसमें बादशाह अपनीबादशाही छोड़कर फ़क़ीरहोगया यानी जगत् और जीवका विचार करनेलगा विचार करते करते परमपदवीको पहुंचगया इसीकेऊपर एक कवि कहतेहैं ॥

सराय दुनिया है कूंचकी जा हरेक को खौफ दम बे दम है । रहा सिकन्दर रहा न दारा रहा फ़रीदों रहा न जम है ॥ मुसाफ़िराना टिकेहो उठो मुक़ाम फिर दोसहै इरम है । नसीमें जागो कमरको बांधो उठाओ बिस्तर कि रात कम है ॥

इसीतरह विचार करने को विचार कहते हैं ॥

सत्सङ्ग ॥

जितने जो कुछ दान व तीर्थ वगैरा साधन हैं उनसे आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती याने सत्संगरूपी एक वृक्ष है और उसका फूल विचार है सो आत्मज्ञानरूपी फलको पाता है जो पुरुष आत्मानन्द से रहित है सो सत्संग से आत्मानन्द से पूर्ण होता है और अज्ञानकरके जो मृत्यु को पाता है सो सत्संग के संगसे ज्ञान पाकर अमर होता है और जो आपदाकरके दुःखी है सो सत्संग करके सम्पदा को पाता है इसी के ऊपर एक दृष्टान्त है कि एक भंवरा एक गोबरके कीड़े को उठा करके लेआया (क्योंकि भंवराओं के बच्चा नहीं पैदाहोता है उसीको अपना स्वरूप बनालेते हैं) और उसको लेकर एक कमलके फूलके ऊपर रस लेनेको बैठगया और उस फूलके ऊपर कीड़ेको छोड़कर दूसरे फूलके ऊपर रस लेने को गया इतने में शाम होगई फूलका मुंह बन्द होगया तो कीड़ा उसके भीतर रहगया भंवरेने विचार किया कि कल जल्दी सुबहको आकर कीड़े को उठा लेजाऊंगा लेकिन सूर्य निकलने के पहिलेही उस फूलको माली तोड़ लेगया और मालीके यहांसे ब्राह्मणने लेजा-

कर शिवके ऊपर चढ़ादिया और दूसरा पूजा करने वाला आया उसने फूलको उठाकर गंगाजी में फेंक दिया जब दिन चढ़ा तो भंवराको कीड़े का ख्याल हुआ तो उस फूलके ऊपर खोजने लगा जब फूलको नहीं पाया तो विचार किया कि माली लेगया होगा जब मालीके घरमें भी उस फूलको नहीं पाया तो ब्राह्मणके घर गया जब वहांभी नहीं पाया तो शिवकेमन्दिरमें जाकर देखा लेकिन वहां पर भी कीड़े को नहीं पाया तो विचार किया कि गंगाजी में फेंक दिया होगा गंगाजी में जाकर देखा तो फूलके ऊपर कीड़ा बैठा हुआ बहता चला जाता था भंवरेने कीड़ेको उठाना चाहा तो उसने कहा कि हे मित्र ! अब मुझे कहां लेजाताहै मैंने तो संगतिका फल पा लिया कि मैं गोबरमें रहने वाला कीड़ा जिस को लोग छूते तक नहीं तेरी सोहबत की बदौलत मैं शिवके शिरतक चढ़ा और अब साक्षात् गंगाजी में गिरा जिसके सिर्फ दर्शनही से पापोंके नाश होते हैं सो मैं तो साक्षात् देह सहित गिरा अब इससे बढ़कर और मुझे क्या चाहिये सत्संग का फल ऐसाही होता है ॥

श्लोक ॥

संतोषःपरमोलाभःसत्संगः परमंधनम् ॥

विचारःपरमंज्ञानं शमश्च परमं सुखम् ॥

अर्थः—संतोष की बराबर कोई ऐसा दूसरा लाभ नहीं है और सत्संगकी बराबर दूसरा धन नहीं है विचार की बराबर दूसरा कोई ज्ञान नहींहै और शमकी बराबर दूसरा कोई सुख नहीं है इसी लिये प्रथम मुमुक्षु पुरुषों को यह बारह साधन करना चाहिये ॥

इसके बाद यह विचार करना चाहिये कि मैं कौनहूं और किसतरह पैदा हुआ इसीके ऊपर एक दृष्टान्तहै कि एक दिन एक साधुका चेला जो किसी दूसरी जगह से आयाथा और रात्रि का वक्तथा चेलेने गुरुजी के सामने आकर प्रणाम किया गुरुने पूछा कि तू कौन है चेला बोला कि मैंहूं गुरुने कहा तू कौनहै-चेला—मैं शरीरधारी हूं गुरु—तीन क़िस्मके शरीर होते हैं कि स्थूल सूक्ष्म और कारण पस इन तीनोंमें से तू कौनहै चेला-मैं स्थूल शरीरहूं गुरु-स्थूल शरीरकी पैदायश पांचतत्त्व औरपंची-करणसे है (पृथ्वी-जल-तेज-वायु-आकाश) इनको पञ्च-तत्त्व कहते हैं इन्हीं पांच तत्त्वों के दो दो हिस्सा करना औरफिर आधे२हिस्साको अलगरखदेना और आधा जो बाकी बचा उसका चारचार हिस्साकरना फिर आधा जो अलग रक्खाथा उनमें चारचार हिस्सा एकदूसरेमें मिला

देना इसीको पंची करणकहतेहैं ॥ और स्थूल शरीर ज-न्मताहै बढ़ताहै और नाश होताहै और इसकी असली पैदायश जिसको तू घृणा करताहै एक पेसावकी बूंदसे है पस इनमें तू कौनहै चेला—मैं स्थूल नहींहूं मैं सूक्ष्म शरीरहूं गुरु—सूक्ष्मकी पैदायश सत्तरह चीजोंसे है याने पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय और पांचप्राण और एक मन और एक बुद्धि इनमेंसे तू कौनहै चेला—ये प-दार्थ भी विकारवान्हैं इनमेंभी मैं नहींहूं मैं कारणशरीर हूं गुरु—कारण उसको कहतेहैं जो न सत्यहै और न अस-त्यहै सत्य तो इसलिये कहाजाताहै कि जब निद्राअवस्था में रहताहै तब कहताहै कि मैं खूब सोया ऐसासोया कि मुझे कुछ मालूम नहींथा इसमुवाफ़िक़ करके तो सत्य है और झूंठा इसतरहसे है कि जब सोकरके उठताहै तो शरीर ज्योंकात्यों मौजूद रहता है पस इनमें तू कौनहै चेला—मैं इनमें भी नहींहूं मैं वोहूं जो न जन्मताहै और न मरताहै न घटताहै न बढ़ताहै याने सच्चिदानन्द स्वरूपहूं—सत् उसे कहते हैं कि जो हमेशातीनोंकालमें एकसमानरहै—चित् जो चीज देखने और कहने में आती है उससे अलाहिदा हूं आनन्द याने सर्व्वप्रकारके दुःखोंसे रहित अप्रपंचरूप जो आत्माहै सो मैं हूं इसीतरह जाननेकोज्ञान कहतेहैं ॥

ईश्वर और माया ॥

शरीर और माया देखनेभरही सत्यहै असल में यह कोई वस्तु नहीं है मायाकरके यह भास रहाहै और इनके कामोंको अज्ञानी पुरुष मानते हैं इसीकरके आवागमन का दुःख पातेहैं=इसीके ऊपर एकदृष्टान्त है-किसी साहूकार ने एक बगीचा लगाया उसमें दो नौकर निगहबानीकेलिये रक्खे उनमेंसे एकतो अन्धाथा दूसरा पंगुला उस बगीचे में बहुत फल लगेथे एकदिन पंगुलाने अंधा से कहा कि भाई फलतो बहुतलगे हैं लेकिन तुमतो अंधा और मैं पंगुला किसतरह हमलोग फल खासक्ते हैं अंधेने पंगुलेसे कहा कि तू मेरे कंधेपर सवार होले और तू फल तोड़ना सो हम भी खांयगे और तुम भी खाना पस ऐसाही उन लोगोंने किया दोचार रोज के बाद मालिक बाग़ देखने को आया और देखाकि बाग़ में फल बहुत कमरहगये हैं तब उनदोनों नौकरोंसे पूंछा कि बाग़के फल कौन शख्स तोड़ लेजाया करताहै उन्होंने जवाब दिया कि आप विचार करलीजिये कि येतो अंधा और मैं पंगुलाहूं न इसकी ताक़त है और न मेरी मालिक भी वाजिब जवाब पाकर चुपहोरहा इसीतरह कई मरतबे देख चुका परन्तु किसीसे कुछ नहीं कहसकता था एक दिन

बाग़का मालिक बग़ीचा के किसीतरफ छिपकर बैठगया और उनदोनों ने साबिक़दस्तूर फलतोड़ना और खाना शुरूकिया तब तो मालिक ने उन्हें गिरफ़दार करलिया और खूब मारा जहांतक मारागया जब हारगया तब फ़िर उन्हें जेलमें भेजदिया अब इसपर विचार करना चाहिये कि संसाररूपी बाग़है और इन्द्रियरूपी अंधाहै और मन-रूपी पंगुला और वासनारूपी फल और धन कुटुम्बरूपी वृक्ष इनमें मनुष्य फसजाताहै तब आत्मारूपी मालिक उसको दण्ड देताहै विचार करनाचाहिये कि मनका और इन्द्रियों का संयोग होताहै तब वासना उत्पन्न होती है इसलिये मनको रोककरके इन्द्रियों के विषयों की तरफ़ ज़ाने नहीं देना चाहिये और अपने मालिक आत्मतत्त्व को पहिंचाने कि जिससे जन्म मरण से रहित होजावें जिसतरह लड़का प्रथम क-ख-सीखताहै उसीतरह प्रथम कर्मोपासना में मनको लगावें याने कर्मोपासनाओं के मतलबको समझें ये नहीं कि ठाकुरजीके मंदिरमें जाता है और 'शान्ताकारंभुजगशयनं' मन्त्रपढ़ताहैउसमन्त्रके पढ़ने में विशेषता नहीं है परन्तु उसके मतलब को समझनेमें विशेषताहै फिर उसको देखनेके लिये कोशिशकरैं कि शान्तरूप और शेषनागके ऊपर शयन करनेवाला

कैसाहै जब उसको देखा फिर उसके मुवाफिक़ होने की कोशिश करना चाहिये इसीकेऊपर एकदृष्टान्तहै एकस्त्री के यहां कोई महमानआया वह विचारी ग़रीब दुखिया थी और उसके घरमें धान छोड़के और कोई दूसराअनाज नहीं था कि महमानके वास्ते बनाकर खिलावे तब उस ने धान कूटना शुरूकिया धान कूटते वक्त उसकीचुडियों की आवाज होने लगी स्त्रीने विचार किया कि महमान के आवाज सुनने से अच्छी नहीं लगेगी तब वो अपनी एक एक चूड़ी फोड़ने लगी प्रथम एक चूड़ी फोड़कर देखा कि आवाज होतीहै या नहीं लेकिन फिर चुड़ियों की आवाज के होने से फिर एक चूड़ी तोड़ी इसी तरह तोड़ते तोड़ते उसके हाथ में एकही चूड़ी रहगई तब उसने विचार किया कि यही ठीक है अब इसी पर विचार करना चाहिये कि कर्म उपासना वगैरा कर्मों को करतारहै परंतु यह नहीं कि उसी में फसारहै मगर आगे का रास्ता तै करनेका फिकर करतारहै जब आखरिमें एकही चीज़ रहजावे याने आप आत्मस्वरूप तो उसीको ब्रह्म कहते हैं वह नित्य है अनादि है अनन्त है और जन्म मरणसे रहित है और दूसरी कल्पना का त्याग करतारहै जिसको ख्याल कहते हैं कल्पना याने

ख्याल कोई चीज नहीं है क्योंकि जितने पदार्थ हैं सब ख्यालही हैं और जिस ख्यालको ख्याल मानते हैं वोभी एक ख्याल है जिस तरह आकाश में अनेक तरह के चित्र देखने में आते हैं लेकिन देखते देखते सब नाश होजातेहैं और शुद्धस्वरूप आकाशही भासमान रहजाता है इसीतरह ख्याली पदार्थ जहांतक ख्याल है वहींतक हैं फिर आखिरिस में हमहीं हम रहजाते हैं इस तरह हमेशह बिचार करते रहना चाहिये ये सब बातें मनुष्य के लिये हैं ॥

अभ्यास ॥

अब कुछ अभ्यास के बारे में लिखाजाताहै अभ्यास के करनेवाले को प्रथम निदिध्यासन करना चाहिये निदिध्यासनके बिना सच्चिदानन्द की प्राप्ति नहीं होती है इसलिये ब्रह्मज्ञानकी इच्छा करने वालों को बहुत कालतक मंगल के लिये निदिध्यासन करना चाहिये निदिध्यासनके पंदरा अंगों को कहताहूं इन्हीं अंगों के साथ निदिध्यासन करना चाहिये ॥

यम-नियम-त्याग-मौन-देश-काल-आसन-मूलबन्ध-देहसाम्य-दृक्स्थिति-प्राणसंयम-प्रत्याहार-धारणा-आत्मध्यान-समाधि-

यम ॥

तमाम जगत्को ब्रह्मरूप जानना इस तरह निश्चय करके फिर इन्द्रियों को वशमें करना यम कहाताहै ॥

नियम ॥

मैं ब्रह्महूं और ब्रह्मसे परे सम्पूर्ण संसार मिथ्या है ॥

त्याग ॥

चैतन्यस्वरूप को अवलोकन करके जो प्रपंच का याने घटपट आदि नाम से व्यवहारके पदार्थोंका त्याग करना त्याग कहलाताहै ॥

मौन ॥

जिसके जबान नहीं हो उसका तो क्या कहना है और जिसकी आवाज और मनकी भी फुरना न होवे याने मनसे वचन से और कर्म से इन तीनों से फुरना नहीं होने का नाम मौनहै मौन धारण करके फूलों से या और किसी चीजसे लिखने का नाम मौन नहींहै ॥

देश ॥

जहां आदि अन्त मध्य में कहीं भी मनुष्य नहीं होवें जिस वक्त संसारियों का शब्द भी सुनाई नहीं देवै और निर्जन स्थान हो उसीको देश कहते हैं ॥

काल ॥

जिस के फुरनमात्र में ही ब्रह्मा वगैरा सब सृष्टि

स्थिति प्रलय होती है इस कारण अखंड आनन्द स्वरूप अद्वैत ब्रह्म को काल कहते हैं ॥

आसन ॥

जिसमें हमेशह अच्छी तरह सुखके साथ ब्रह्म का विचार होवे याने पद्मासनके आसनको आसन कहतेहैं॥

मूलबंध ॥

आकाश वगैराओंका आदिकारण और चित्त एकाग्रका मूलहै उसीको मूलबन्ध कहतेहैं ॥

देहसाम्य ॥

सब प्राणियों में सम दृष्टि करके जो समान ब्रह्म में लीन होजाताहै उसको देहसाम्यकहते हैं ॥

दृक्स्थिति ॥

दृष्टि को ज्ञानमय करके उस दृष्टिके द्वारा ब्रह्ममय जो जगत् को देखना है उसको दृक्स्थिति कहतेहैं ॥

प्राणायाम ॥

चित्त आदिको लेकर सब प्रकार के पदार्थों में ब्रह्म-भावना करके और सब प्रकार की इन्द्रियों की वृत्तियों का रोकनाहै उसको प्राणायाम कहतेहैं ॥

प्राणायाम तीन तरह का है याने रेचक,पूरक,कुंभक- रेचक याने प्रपंच का त्याग और मिथ्यात्व को रोकना

पूरक सब एक ब्रह्मही है इसीतरह वृत्तियों का रखना कुंभक अनन्तर निश्चलता से एक ब्रह्म निश्चय होताहै उस को कुंभक कहते हैं ॥

प्रत्याहार ॥

सर्व्वजगत् को ब्रह्ममय देखकर और चैतन्यस्वरूप आत्मा में चित्तको लगाना उसको प्रत्याहार कहतेहैं ॥

धारणा ॥

जहां जहां मनजावे वहांवहां ब्रह्मस्वरूप दर्शनपूर्वक मनको निश्चल करने को धारणा कहते हैं ॥

आत्मध्यान ॥

सम्पूर्ण विकारोंकोदूरकरके और देहके कर्मोंको त्याग करके तमाम ब्रह्महै इसप्रकार ज्ञानकरके सम्पूर्णब्रह्महै इस प्रकार ज्ञानकरके जो ब्रह्मस्वरूप अवलम्बनकर स्थिति करनाहै उसीको आत्मध्यान कहतेहैं ॥

समाधि ॥

निर्विकार चित्त होकरके अपनेको ब्रह्मस्वरूप ज्ञान करके सम्पूर्ण प्रकारके प्रपंचभाव को परित्याग करना समाधि कहलाताहै ॥

जबतक आनन्दमय ब्रह्मके वशमें नहीं होवे तबतक

निदिध्यासन अच्छीतरहसे अभ्यास करना चाहिये लेकिन जिसवक्त निदिध्यासन के द्वारा अपने आप ब्रह्म स्वरूप होजाय उस वक्त निदिध्यासन वगैरः का कुछ प्रयोजन नहीं है ॥

अब कुछ पातंजलिऋषिके मत से लिखते हैं धन्यहै वह सज्जन जिसका आदर सत्कार करते हैं परन्तु यह ब्रह्मज्ञान योगियोंको सजहीमें नहीं मिलता वरन विद्वान् योगी महात्मा और धीर पुरुष योग विभाग से नाड़ियों के द्वारा अपनी आत्मामें धारण करते हैं अर्थात् बड़ेबड़े साधनोंसे वह अनमूल्य रत्न मिलताहै जिनकी व्याख्या पातंजलि महर्षिनेकी है जिसका हम आगे संक्षेपसे वर्णन करते हैं इसलिये सज्जन पुरुषों को आलस्य त्याग प्रतिदिन आठोंअंगों का सेवन युक्तिपूर्वक करना चाहिये क्योंकि यह यज्ञ सब यज्ञोंसे श्रेष्ठहै इस बात को श्रीकृष्ण महाराजने भी गीता में बारह प्रकारके यज्ञोंमें प्राणायाम याने प्राण को निरोध करना सबसे श्रेष्ठ कहाहै ॥

अष्टाङ्गयोगके आठोंअङ्गोंका वर्णन ॥

यम–नियम–आसन–प्राणायाम–प्रत्याहार–धारणा–ध्यान–और समाधि यह योग के आठ अंगहैं ॥

यमकावर्णन ॥

(१) अहिंसा (२) सत्य (३) अस्तेय (४) ब्रह्मचर्य (५) अपरिग्रह ॥

अहिंसा ॥

किसी से वैरभाव मन से नकरना अर्थात् सुख संभोग युक्त प्राणियोंमें मैत्री और दुःखियोंपर दया पुण्यात्माओं में मुदिता और पापियों में उपेक्षा करना चाहिये ॥

सत्य–जैसा अपनी आत्मामें हो वैसा कहै और माने जो मनुष्य ऐसा करते हैं उनकी वाणीसे जो निकलताहै वैसाही होताहै ॥

अस्तेय–किसी प्रकारकी चोरी न करना जो इसकी यथावत् सेवन करता है उसको सब पदार्थ मिलजातेहैं ॥

ब्रह्मचर्य–इसको कहते हैं कि कोई तरहसे वीर्य को स्खलित न होने देना अर्थात् जो वीर्यकी पूर्णरक्षा करता है वह पूर्णज्ञानी और महात्मा होनेके योग्य है ॥

अपरिग्रह–जब मनुष्य यथावत् इन्द्रियों को अपने वशमें करलेता है तब उसके मनमें यह विचार आता है कि मैं कौनहूं और कहां से आयाहूं और क्या करताहूं

मुझको क्या करना चाहिये और मेरी किस बातमें भला-
ई है इत्यादि ऐसी बातोंके विचारका नाम अपरिग्रह है।

नियम॥

शौच-संतोष-तप-स्वाध्याय-ईश्वरप्रणिधान यह पांच प्रकारका नियम है॥

शौच-यह दो प्रकार का है एक शारीरक दूसरा आत्मिक शारीरक शुद्धि जल और खानपान आदिसे होती है और आत्मिक वेदादि विद्या पढ़ने और धर्म पर चलने और सत्संगसे होती है॥

सन्तोष-उसको कहते हैं जो सदा धर्मानुकूल कार्यों को करता हुआ नाना प्रकारके क्लेश होनेपर भी धीरज को नहीं छोड़ता आलस्य का नाम संतोष नहीं है॥

तप-जैसे सोना चांदी आदिको अग्निमें तपाने से स्वच्छ होजाते हैं वैसेही आत्मा और मनको धर्माचरण-रूपी शुभगुणोंमें तपाकर निर्मल करने का नाम तप है स्वाध्याय के तीन भेदहैं मनसा वाचा कर्मणा इन तीनोंको धर्माचरणमें लगानाही तप कहाताहै अग्निमें जला कर बीचमें बैठने का नाम तप नहीं है॥

ईश्वरप्रणिधान-सब सामर्थ्य सर्वगुण प्राण आत्मा

और मनके प्रेमभावसे आत्मादि सत्यद्रव्यों का ईश्वरके लिये समर्पण करने को कहते हैं ॥

आसन ॥

आसन—उसको कहते हैं कि जिसमें शरीर और आत्मा सुखपूर्वक स्थिरहो इसलिये जैसीरुचिहो वैसाआसन करे जब आसन दृढ़ होजाता है तब उपासना करने में परिश्रम नहींजान पड़ता और शरदी गरमी आदि नहीं व्यापती यह उपासनाका तीसरा अंग अर्थात् सीढ़ीहै ॥

प्राणायाम ॥

आसन स्थिर होनेसे जो प्राणों की गतिका अवरोध होताहै उसे प्राणायाम कहते हैं आसन सिद्धिहोने पर जो बाहरसे वायु भीतर को जाताहै उसको श्वास कहते हैं और जो भीतरसे बाहर जाताहै उसे प्रश्वास कहते हैं और इन दोनों की गति के अवरोधको प्राणायाम कहते हैं वह चारप्रकारकाहै बाह्य,आभ्यंतर, वृत्तिस्तम्भ,बाह्याभ्यन्तराक्षेपी,बाह्य वह है कि जब भीतर से वायु बाहर को निकले उसको बाहरही रोकदे ॥

आभ्यंतर उसे कहते हैं कि जब बाहरकी वायु भीतर जावे तब जितना होसके भीतरही रोके ॥

स्तम्भवृत्ति उसको कहते हैं न प्राणको बाहर नि-काले न बाहर से भीतर ले वरन जितनी देर होसके सुखपूर्वक जहां का तहां रोकदे ॥

बाह्याभ्यंतराक्षेपी जब श्वास भीतर से बाहरको आवै तब बाहरही थोड़ा थोड़ा रोकता रहै और जब बाहर से भीतर को जावे तब उसको भीतरही थोड़ा थोड़ा रोके ॥

प्राणायाम करनेकी विधि ॥

जिस प्रकारके होती है जिसको लौटा वा वमन कह-ते हैं जिसके होने से भीतर पेटके अन्न और जल बाहर निकल आते हैं उसी प्रकार प्राणको बलसे बाहर फेंकके बाहरही यथाशक्ति रोकदेवै और जब बाहर निकालना चाहे तो मूलेन्द्रियको ऊपर खींच रक्खे जबतक प्राण बाहर निकलें और जब घबराहट हो धीरे धीरे भीतर लेजाय और जितना होसके रोके इसीप्रकार जितनी सामर्थ्यहो धीरे धीरे बढ़ावे ॥

प्रत्याहार ॥

प्रत्याहार उसको कहते हैं जब मनुष्य अपने मनको जीतलेताहै तब सब इन्द्रियां अपने आधीन करलेता है क्योंकि मनही इन्द्रियों का चलानेवालाहै सचमुच मन ही इन्द्रियों का चलाने वालाहै इन्द्रियां कभी काम नहीं

करती जबतक कि मन इन्हें प्रेरणा नहीं करता निश्चय जानों कि जितने विकार और दुष्टभाव इन्द्रियों के द्वारा प्रकट होते हैं सब मनकेही उत्पन्न कियेहुये होते हैं महात्माओं ने मनुष्यके शरीरकी बनावट को एक रथ के समान माना है बुद्धिरूपी रथवान् मनकी रस्सियों से इन्द्रियों के घोड़ों को अपने आधीन रख सकताहै पस जिस प्रकार रासों के घुमान से जिधर को चाहो घोड़ों को फेर सकतेहो उसी प्रकार मन जिधर चाहता है उधर इन्द्रियों को घुमाताहै इस कारण कर्म ठीक करनेके अर्थ मनको निर्दोष कियाजावै यहमन बड़ी बड़ी दूरजाताहै जो देश और कालकी रुकावट में भी नहीं आता इससे अधिक प्रबल चालवाला कोई नहीं सो यह मन जीवात्माके आधीन है परन्तु जीवात्मा उसको अपने आधीन न रखकर किन्तु उसके आधीन होकर नाना प्रकार के दुःखोंको झेलता है इसलिये परमेश्वरसे प्रार्थना की गई है कि इस मनको हमारे आधीन सदा बनाये रहै न कि हमको उसके सो मनकी चंचलता प्राणायामसाधन से जाती रहती है इसलिये शांति ढूंढनेवालो इस क्रिया को कर मनको आधीन कर आनन्दको भोगो ॥

धारणा ॥

धारणा—उसको कहते हैं किमनको चंचलतासे छुड़ाकर जिस स्थान पर जिस विषयमें चित्तको लगावें वहीं चित्त ठहरजावें अर्थात् जिस विषयमें चित्तको लगानाहो उसको छोड़कर कहीं न जावे ॥

ध्यान ॥

ध्यान—धारणा के पीछे उसी देशमें ध्यान करे आश्रय देने के योग्य जो अन्तर्यामी व्यापक ब्रह्म उसी के प्रकाश आनन्दमें अत्यन्त विचार और प्रेमभक्तिके साथ इस प्रकार प्रवेश करना जैसे समुद्रके बीचमें नदी प्रवेश करती है उस समयमें ब्रह्मको छोड़ किसी अन्य पदार्थ का स्मरण नहीं करना उसी ब्रह्मके ज्ञानमें मग्न होनेको ध्यान कहते हैं ॥

समाधि ॥

समाधि—जैसे अग्निके बीचमें लोहा भी अग्नि होजाता है उसी प्रकार ब्रह्मके साथमें प्रकाशमय होके अपने शरीरको भूलेहुये के समान जानके मनको ब्रह्मके प्रकाशस्वरूप आनन्द और ज्ञानसे परिपूर्ण करने को समाधि कहते हैं ध्यान और समाधि में इतना अन्तरहै कि ध्यान में तो ध्यान करने वाला और मन और जिस का ध्यान करताहै ये तीनों विद्यमान रहते हैं परन्तु

समाधि में केवल ब्रह्महीके आनन्दस्वरूप ज्ञानमें मग्न होजाता है वहां तीनोंको भेदभाव नहीं रहता जैसे मनुष्य जलमें डुबकी मारके थोड़ा समय भीतरही रुका रहता है वैसेही मन परमेश्वरके बीचमें मग्न होकर फिर बाहर को आजाताहै और जिस देशमें धारणा कीजावे उसमें ध्यान और उसीमें समाधि याने ध्यान करने के योग्य ब्रह्ममें मग्न होजाने को संयम कहते हैं जो एकही कालमें तीनों का मेल होताहै याने धारणाके संयुक्त ध्यान और ध्यानसे संयुक्त समाधि होती है उसमें बहुत सूक्ष्म काल का भेद रहताहै परन्तु जब समाधि होतीहै तब आनन्द के बीचमें तीनों का फल एकही होजाताहै उस वक्तके आनन्दकी महिमा कहने योग्य नहींहै ऐसा ही अन्य शास्त्रकारोंने भी कहाहै कि समाधिरूप नदीमें गोता लगाने से मल धोयागया ऐसा चित्त जब आत्मा में लगाया जाताहै तब जो सुख होताहै उस का वर्णन वाणी से नहीं होसक्ता किन्तु उसका सुख अपने आप जानताहै इस प्रकार अष्टाङ्गयोग को जानो ॥

[ॐ]

ॐकार और ब्रह्मका क्या अभेद है ? ॥

जैसे सर्वस्वरूप ॐकार है तैसे सर्वस्वरूप ब्रह्महै इस

से ॐकार ब्रह्मरूप है याने ॐकार ब्रह्मका वाचकहै ब्रह्म वाच्यहै ॥ वाच्य का और वाचक का अभेद होवे है इस से ॐकार ब्रह्मरूपहै और विचारदृष्टिसे तो जो अक्षरब्रह्म विषे अध्यस्त है ब्रह्म तिसका अधिष्ठान है अध्यस्त का स्वरूप अधिष्ठान से न्यारा होवे नहीं इससे भी ॐकार ब्रह्मस्वरूपहै इससे ॐकारको ब्रह्मरूप करके चिंतनकरै ॥

चार पादन के कथनपूर्वक आत्मा को ब्रह्म से और विश्व का विराट् से अभेद विराट् विश्वके सप्त अंग और उन्नीस मुख ॥

ब्रह्मरूप ॐकारका आत्मासे भी अभेद चिंतन करै क्योंकि आत्मा का ब्रह्म से मुख्य अभेद है और ब्रह्मके चार पादहैं तैसे आत्मा के भी चार पाद हैं (पाद नाम भाग का है और उस को अंश भी कहते हैं) विराट्–हिरण्यगर्भ–ईश्वर–और तत्पद का लक्ष्य ईश्वर साक्षी ये चार पाद ब्रह्मके हैं विश्व तैजस प्राज्ञ और त्वंपद का लक्ष्य जीव साक्षी ये चार पाद आत्माके हैं (जीवसाक्षी को ही) तुरीय कहते हैं ॥

समष्टिस्थूल प्रपंचसहित चैतन्य विराट्है॥व्यष्टिस्थूल अभिमानी विश्वहै विराट्की और विश्वकी उपाधिस्थूल है इसमे विराट्रूपही विश्वहै विराट् से जुदा नहीं विराट्

रूप विश्वके सात अंगहै = स्वर्गलोक मूर्धहै—सूर्य नेत्र हैं—वायु प्राणहै—आकाश धड़है—समुद्रजल मूत्रस्थान है—पृथ्वी पादहै—जिस अग्निमें होमकरै सो अग्नि मुख है—ये सात अंग विश्वकेहैं माण्डुक्यमें स्वर्गलोक वगैरह विश्वके अंग बने नहीं तथापि विराट्के अंगहैं उसविराट् से विश्वका अभेदहै—इससे विश्वके अंग कहेहैं ॥

तैसे विराट् विश्वके उन्नीस मुखहैं—पंचप्राण—पंचकर्मइन्द्रिय—पंचज्ञानेन्द्रिय—चारअन्तःकरण ये उन्नीस मुख कीनाईं भोगके साधनहैं इससेमुख कहागयाहै—इनउन्नीससेस्थूलशब्दादिकनकों बाह्यवृत्तिकरकेजाग्रत् अवस्था विषे भोगेहै—याते विराट्रूप विश्व स्थूलका भोगताहै—औरं बाह्यवृत्ति कहिये है और जाग्रत् अवस्थावालाहै॥

चतुर्दशत्रिपुटी ॥

प्राणादिक उन्नीस जो भोगके साधन हैं—तिनविषे श्रोत्रादिक इन्द्रिय और अन्तःकरण चार—ये चतुर्दश अपने अपने विषय और अपनेअपने देवताकी सहाय चाहते हैं देवता विषयकी सहाय विना केवल इनसे भोग होवें नहीं इससे पंचप्राण और चतुर्दशत्रिपुटी विराट्रूप विश्वके मुखहैं तिनके समुदाय का नाम त्रिपुटीहै =सो त्रिपुटी इसतरह से कही है = श्रोत्रइन्द्रिय अध्यात्म है

और उसका विषय शब्द अधिभूतहै दिशाका अभिमानी देवता अधिदैवहै त्वचा इन्द्रिय अध्यात्महै इसका विषय स्पर्श अधिभूतहै और वायु अधिदैवहै नेत्र इन्द्रिय अध्यात्महै रूप अधिभूतहै सूर्य अधिदैवहै नेत्र इन्द्रिय अध्यात्महै रस अधिभूत वरुण अधिदैवहै रसना इन्द्रिय अध्यात्म गंध अधिभूतहै अश्विनी कुमार अधिदैवहै हस्त इन्द्रिय अध्यात्म पदार्थोंका उठाना अधिभूत इन्द्रिय अधिदैवहै पाद इन्द्रिय अध्यात्म गमन अधिभूतहै विष्णु अधिदैवहै गुदा इन्द्रिय अध्यात्म मलका त्याग करना भोग अधिभूत प्रजापति अधिदैवहै मनअध्यात्म इसका विषय फुरना अधिभूत चन्द्रमा अधिदैवहै बुद्धि अध्यात्म और बोधका होना अधिभूत ब्रह्मा अधिदैवहै अहंकार अध्यात्म और अहंभाव अधिभूत शिव अधिदैवहैं ये चतुर्दश त्रिपुटी पंचप्राण उन्नीसविराट् रूप विश्वके मुखहैं॥

विश्वविराट् और ॐकार में क्याफर्कहै ॥

जैसे विराट् विश्वमें कोई फर्क नहीं है इसीतरहॐकार के प्रथम मात्रा अकार और विराट्रूप विश्वमें कोई फर्क नहीं है क्योंकि ब्रह्मके चार पादों में प्रथमपाद विराट्है और आत्माके चार पादोंमें प्रथमपाद विश्वहै इसी

तरह ओंकारके चार मात्रारूप पादों में प्रथम पाद अकार है इसलिये प्रथम का तीनों में समान धर्म होनेसे विश्वः विराद् आकार में फर्क नहींहै जो सात अंग उन्नीसमुख विश्व के हैं वही सात अंग और उन्नीस मुख तैजस के भीहैं लेकिन सिर्फ इसक़दर फर्कहै कि विश्वके जो अंग और मुखहै वो ईश्वर रचितहै और तैजसके जो इन्द्रिय देवता विषयरूप त्रिपुटी और मूर्द्धादिक अंग सो मनोमयहैं और तैजसका भोग सूक्ष्महै भोग नाम सुख या दुःखके ज्ञानका है उसके विषे स्थूलता और सूक्ष्मता कहना बने नहीं तथापि बाहरके जो शब्द वगैरः विषयहैं उसके सम्बन्ध से जो भोग होताहै वही सूक्ष्महै इसलिये विश्व तो स्थूल का भोक्ता श्रुति विषे कहाहै और तैजस को सूक्ष्मका भोगनेवाला कहाहै क्योंकि तैजसके भोग शब्द वगैरह हैं वह तो मानसिकहैं याने मनोमयहैं इस लिये सूक्ष्महै और तिनकी अपेक्षा करके विश्व जो भोग बाह्य शब्दादिकहैं सो स्थूलहै इसलिये विश्व बाहिरप्रज्ञहै है और तैजस अन्तरप्रज्ञहै क्योंकि विश्वकी अन्तःकरण की वृत्ति बाहर जावे है और तैजसकी नहीं जावेहै ॥

तैजसहिरण्यगर्भ और उकारका अभेद ॥

जैसे विश्व और विराद्का अभेदहै उसीतरह तैजसको

भी हिरण्यगर्भ जानना चाहिये क्योंकि सूक्ष्म उपाधि तैजसकीहै और सूक्ष्मही हिरण्यगर्भकीहै इसलिये दोनों की एकता जाने तैजस और हिरण्यगर्भकी एकता जान करकेऔरफिरओंकारकी दूसरीमात्रा उकारसेइनका अभेद विचारकरैं क्योंकि आत्माके चार पादोंमें दूसरापाद तैजसहैऔर ब्रह्मकेपादोंमें हिरण्यगर्भ दूसरा पाद है और ओंकारकी मात्राओं में दूसरीमात्रा उकारहै द्वितीयता तीनों में समानहै इन तीनों को एकरूप विचारकरैं ॥

प्राज्ञ ईश्वर और मकारका अभेद ॥

प्राज्ञको ईश्वररूप जानै क्योंकि प्राज्ञ की कारण उपाधि है और ईश्वरकी भी कारण उपाधि है ईश्वर और प्राज्ञपादन में तृतीय है ओंकार की तृतीय मात्रा मकार है–तीसरा पना तीनों में समानपना है–इससे तीनों की एकता जानै– और यह प्राज्ञ प्रज्ञानघन है क्योंकि जाग्रत् और स्वप्न के जितने ज्ञान हैं सो सुषुप्ति विषे घन याने एक अविद्यारूप होजावे हैं जैसे आटा जल से पिंडके बांधे हुये एकरूप होय है और वर्षाके अनन्त बिंदु तालाव में एकरूप होवे हैं इसीतरह जागृत् स्वप्न के ज्ञान सुषुप्तिविषे एक अविद्यारूप होवेहै इससे प्रज्ञानघन

है और आनन्दभुक्‌ भी यह प्राज्ञ श्रुतियों में कहा है क्योंकि अविद्यासे पैदाहुआ जो आनन्द है उसको यह प्राज्ञ भोगे है इससे आनन्दभुक्‌ कहते हैं जैसे तैजस और विश्व का भोग त्रिपुटी से होवे है इसीतरह प्राज्ञके भोग भी त्रिपुटी हैं—चेतनके प्रतिबिंब सहित जो अविद्याकी वृत्ति है सो अध्यात्म है और अज्ञान से पैदाहुआ जो स्वरूप आनन्द सो अधिभूत है और ईश्वर अधिदेव है इसलिये विश्व बहिरप्रज्ञ है और तैजस अन्तरप्रज्ञ है और प्राज्ञ प्रज्ञानघन है इसी तरह जो तीनोंका भेदहै सो उपाधि करके है विश्वकी स्थूल सूक्ष्म अज्ञान तीनों उपाधि हैं और तैजसकी सूक्ष्म अज्ञान ही उपाधिहै और प्राज्ञ की अज्ञान एक उपाधिहै इसलिये उपाधि की न्यूनता और अधिकता से तीनों का भेद है और असली विचार से जो देखाजावे तो स्वरूप से भेद नहीं है विश्व तैजस प्राज्ञ इन तीनों विषे अवगत जो चैतन्य हैं सो परमार्थ याने असलियत से तीनों उपाधियों के सम्बन्ध से रहितहै और तीनों उपाधिका अधिष्ठान तुरीयहै सो बहिरप्रज्ञ नहीं और अन्तरप्रज्ञ नहीं और प्रज्ञानघन भी नहीं कर्मइन्द्रिय और ज्ञानइन्द्रिय का विषय नहीं और बुद्धिका विषय नहीं ऐसा जो तुरीय है उसको परमात्मा

का चौथापाद ईश्वर साक्षी शुद्ध ब्रह्मरूप जानै इस तरह से दो प्रकारका आत्माका स्वरूप कहा एकपरमार्थ रूप दूसरा अपरमार्थरूप उसमें तीनपाद तो अपरमार्थ-रूपहैं याने विश्व तैजस प्राज्ञ और एक पादतुरीय परमार्थ रूपहै जैसे आत्मा के दो स्वरूप हैं तैसे ॐकार के भी दो स्वरूप हैं अकार उकार और मकार यह तीन मात्रा रूप जो कहा है सो परमार्थरूप है और तीनों मात्राविषे व्यापक जो अस्ति भाति प्रियरूप अधिष्ठान चैतन्य है सो परमार्थरूप है ॐकार परमार्थरूप है उसको श्रुतियोंमें अमात्र शब्द करके कहते हैं क्योंकि परमार्थस्वरूप विषे मात्राविभाग नहीं है इसवजे से अमात्र है इसीतरहसे दो रूपवाला जो ॐकार है उसका दो स्वरूपवाले आत्मा से फरक नहीं है इसलिये ॐकार के अमात्ररूप को और तुरीयको एकरूप जाने अब आत्मा के पद और ॐकार की जो मात्रा हैं तिनको एकजानकर लय चिंतन करै॥

विश्वरूप जो अकार है सो तैजसरूप उकारसे जुदा नहीं है लेकिन उकाररूप है इस मुवाफिक विचार करने कोही लय कहते हैं इसीतरह दूसरी मात्राओंको भी समझलेना चाहिये और जिसतरह उकारमें आकर का लय किया है इसीतरह तैजसरूप उकारको प्राज्ञरूप मकारविषे

लय करै और प्राज्ञ जो मकार तिसको तुरीयरूप ओंकार का परमार्थरूप अमात्र है उसके विषे लीनकरै क्योंकि स्थूल की उत्पत्ति और लय सूक्ष्मविषे हुई है इससे विश्वरूप जो अकार है उसका तेजसरूप उकार में लय बनती है और सूक्ष्मकी उत्पत्ति और लय कारणमें बनतीहैं इससे तैजसरूप जो उकार है उसका प्राज्ञरूप जो मकार है उसके विषे लय बनतीहै इसजगह विश्व वगैरहके ग्रहण से समष्टि जो विराट् वगैरहहैं उनका और अपनी अपनी त्रिपुटी तिन सबका ग्रहण जानना जिस प्राज्ञरूप मकार विषे उकार का लय किया है उसी मकारको तुरीयरूप ॐकार का असलीरूप अमात्र है उसके विषे लीनकरै क्योंकि ॐकार के असलीरूप का तुरीयसे फरक नहीं है सो तुरीय ब्रह्मरूप है और शुद्धविषे ईश्वर प्राज्ञ दोनों कल्पित याने ख्याली हैं जो जिसके विषे कल्पितहोवैहै सो उसका स्वरूप होवे है क्योंकि असली चीज़के मिलने से उसमें से निकली जो चीज़ है वो कल्पित याने सिर्फ ख्याली होती है और फिर वही कल्पित चीज़ असली चीज़ में लीनहोकर उसी का रूप होजाती है इसलिये ईश्वरसहित प्राज्ञरूप मकार का लय तुरीय में बनती है इसीरीति से ॐकार का असलीरूप अमात्र

विषे सबका लय किया है सो मैं हूं इसी मुवाफ़िक एकाग्र चित्त होकरके विचारकरै कि स्थावर जंगमरूप असंग अद्वैत असंसारी नित्यमुक्त निर्भय ब्रह्मरूप जो ॐकारका असली स्वरूप सो मैं हूं इसी मुवाफिक विचार करनेसे ज्ञानका उदय होवे है इस ज्ञानके द्वारा मुक्तिरूप फलका देनेवाला यह ॐकार निर्गुण उपासनाहै सो सबमें उत्तमहै ॥

ॐकार को दूसरी तरहसे अभेद लिखते हैं ॥

ॐकार की प्रथम मात्रा अकार ॥

अकार स्थूलरूपी जगत् जगतका रूप विराट्-उसका अभिमानी विश्व उसका-देवता ब्रह्मा जाग्रत् अवस्था और राजस गुण ॥

ॐकारकी दूसरी मात्रा उकारका वर्णन ॥

सूक्ष्म-तैजस हिरण्यगर्भ विष्णुदेवता स्वप्न अवस्था सतोगुण ॥

ॐकार की तीसरी मात्रा मकार ॥

मकारका कारण शरीर अव्याकृतरूप प्राज्ञ अभिमानी रुद्रदेवता सुषुप्ति अवस्था तमोगुण ॥

अकार मात्राको उकार मात्रामें मिलावें और स्थूल शरीरको सूक्ष्ममें मिलावें क्योंकि स्थूलका लय सूक्ष्म-के

साथ होते हैं जो पदार्थ देखने और बोलने में आवेहै वो सूक्ष्ममें लीन होजाते हैं याने उसका ज्ञान सूक्ष्मसे होवे है इसीलिये स्थूल झूठा पदार्थ है क्योंकि जन्मताहै और मरताहै बढ़ता है और घटता है विराट्को हिरण्यगर्भ में मिलावें क्योंकि विराट्की उत्पत्ति हिरण्यगर्भसेहै विश्व को तैजसके साथमें मिलावें ब्रह्माको विष्णु के साथ मिलावें क्योंकि ब्रह्माकी उत्पत्ति विष्णुसे है जाग्रत् को स्वप्नके साथ मिलावें क्योंकि जाग्रत् वस्तु स्वप्न में देखी जाती है और देखने मात्र सत्य है परन्तु वस्तु असत्यहै रजोगुणको सतोगुणमें मिलावें क्योंकि रजोगुणकी उत्पत्ति सतोगुणसे है ॥

उकार मात्राको मारकर मात्रामें मिलावें और सूक्ष्म शरीर को कारण शरीरमें मिलावें क्योंकि सूक्ष्म शरीर मनन मात्रहै और कारण न सत्यहै न असत्यहै इसलिये सूक्ष्मकी उत्पत्ति कारणसेहै हिरण्यगर्भको अव्याकृत में मिलावें और तैजसको प्राज्ञमें मिलावें प्राज्ञ आनन्द का भोगनेवालाहै और तैजस अज्ञानहै अज्ञानपने में दोनों समानहैं इसलिये तैजसका प्राज्ञमें लय बने है और विष्णु को रुद्रमें मिलावें क्योंकि विष्णुकी उत्पत्ति रुद्रसे है स्वप्न को सुषुप्ति में मिलावें क्योंकि स्वप्न अवस्था झूठी पदार्थ

है जहांतक स्वप्न रहताहै तहांतक सच्चाहै नींद खुलजाने से झूठा प्रतीत होजाताहै इस मुवाफ़िक़ सुषुप्ति अवस्था को भी जानो येभी जहांतक सोया रहताहै तहांतक कहताहै कि खूब सोया ऐसा सोया कि मुझको कुछ भी खबर नहीं रहा कि मैं कहांथा और दिन निकलनेसे शरीर मौजूदहै झूंठे पने में दोनों समानहैं इसीमुवाफ़िक़ जगत् के पदार्थ को जानो जहांतक अविद्याहै तहांतक संसार सत्यहै जब उपदेशरूपी ज्ञानहोय तब सत्यपदार्थ को माना था उसको असत्यजानते हैं और जिसको असत्य माना था उसको सत्य जानते हैं इसलिये स्वप्नकालय सुषुप्तिमें बने है सतोगुणको तमोगुणमें मिलावें सतोगुण शान्ति को कहते हैं और शान्ति स्वभाव को तमोगुण अपनेमें लीन करलेताहै जबतक तमोगुण रहताहै तहांतक सतोगुण रजोगुण को ठहरने नहीं देता इसीलिये सतोगुणकी उत्पत्ति तमोगुणसेहै और इनसबको ॐकाररूप तुरीय में मिलावें ॐकार कैसाहै कि निर्विकल्प निराकार घनस्वरूप सच्चिदानन्द परिपूर्ण परमेश्वर परमात्मा जोहै सो मैंहूं इसी मुवाफ़िक़ समझना चाहिये और ये जो तीनों कल्पित पदार्थ हैं उनसे निर्लेपरहै और सर्व जगत्को अपने स्वरूप में जाने याने दृष्टारूप रहै संसाररूपी इन्द्रजाली

तमाशाहै उन तमाशाओंका कर्त्ता व तमाशारूप न बने सिर्फ तमाशा को देखतारहै न कि तमाशावाला मदारी व तमाशाके साथमें अपना भी नाचनेवाला बनबैठे ॥

श्रीकृष्ण महाराजनें अर्जुनके प्रति कहाहै कि हे अर्जुन! बड़े २ वेदान्ती जिसको अक्षरब्रह्म कहते हैं संन्यासी सकल वासनाओंको त्यागकरके बड़े प्रयत्नसे जिसमें प्रवेशकरते हैं और जिसका ज्ञानहोनेके वास्ते कितनेक ब्रह्मचारीहो गुरुकुल में बास करते हैं तिसीकी प्राप्ति के अर्थ तुमको संक्षेप से उपाय कहताहूं ॥

श्लोक ॥

सर्वाद्वाराणि संयम्य मनोहृदिनिरुध्यच। मूध्न्र्याधायात्मनः प्राणमास्थितोयोगधारणाम् ॥ ॐमित्येकाक्षरंब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् । यःप्रयातित्यजन्देहं सयातिपरमांगतिम् ॥

अर्थः—सो ऐसे कि सकलइन्द्रिय विषयोंमें से निवृत्त करके सकल द्वारोंको रोक करके और मन हृदयमें निरुद्ध करके और योगबल से प्राणको मस्तक में चढ़ाय स्थापन करके योगधारणामें स्थित होकर ब्रह्मस्मरण पू-

र्वक,ॐ इस प्रणवाक्षरका उच्चारण करते करते जो योगी देह छोड़ताहै वह उत्तमगति को प्राप्त होताहै ॥

इसलिये मनुष्य इस ॐकारको हमेशा अपने हृदय में धारण करै ॐकारकी चार मात्राओं का फल ॐकार की प्रथम मात्रा अकारका जो ध्यान करता है वह ब्रह्माके लोकमें जाताहै और दूसरी मात्राउकारका जो स्मरण करताहै वह चन्द्रलोक को जाताहै ॐकारकी तीसरी मात्रा मकारका जो ध्यानकरताहै वह सूर्यलोक में वासकरता है और जो ॐकार की चौथी मात्रा तुरीय का ध्यान करता है वो सच्चिदानन्द घनस्वरूप परिपूर्ण जो सबका प्रकाश करताहै उसमें लीन होता है इसीतरह ॐकारके स्वरूप को जानना चाहिये और सतसंग और सतशास्त्ररूपी फलको लेकर के हमेशा विचार करना चाहिये याने अपनेको पहिचानना चाहिये फ़क़त ॥

दो० । करत सबनि सों वीनती हाथ जोड़ शिरनाय ।
तत्त्व विवेकियों का दासहूं ज्ञाता करहु सहाय ॥
हूं अजान जानत न कछु लीजो चूक सुधारि ।
करत बाल सम ढीठही यही जीयमें धारि ॥

इति श्रीईश्वरदीपिकाशिक्षासम्पूर्णतामगात् ॥

ॐश्रीसच्चिदानन्दार्पणमस्तु ॥

इश्तहार ॥

वैराग्यशतक ॥

जिस में इस असार संसार से विरक्त विरागी जनों को वैराग्य वर्णित है जिस को श्रीभर्तृहरि जीने संस्कृत श्लोकों में रचा था उसी को कविवर श्रीहरदयाल जीने दोहा, सोरठा, सवैया व कवित्तादिकों से सुशोभित किया—उसी को भाषानुवाद पिशावरनिवासी श्रीस्वामी परमानन्दजी ने सर्वसाधारण मुमुक्षुजनों के चित्तानन्दार्थ अतिश्रम से निर्माण किया ॥

[illegible] ॥

अमेठी के राजा श्रीमाधवसिंह जी रचित—जिस में अत्युत्तम वैराग्य व ज्ञान निर्माण और काम क्रोध लोभ मोह लगद्विषयादि खण्डन सहित ईश्वर यश में अनुरागमण्डन व भगवती शिवा काशी विश्वनाथादि प्रशंसासहित मनोहरपद स्वैया, भैरवी, होरी और खेमटादि रागों में वर्णित हैं ॥

[illegible] ॥

जिस में ईश्वर कृष्णाचार्य ने सत्तर कारिकाओं में साठ तत्त्वोंका कथन किया है टीका सरल मध्यदेशीय भाषा में बाबू जालिमसिंह निवासी ग्राम अकबरपुर ज़िला फ़ैज़ाबाद हेडपोस्ट मास्टर नैनीतालने गौड़पादाचार्य के भाष्यानुसार रचनाकियाहै॥

[illegible] ॥

जिस में चार प्रकार के तिलक, अर्थात् (शङ्करभाष्य १) (आनन्दगिरि २) (श्रीधरजी ३) (नवलभाष्य ४) संयुक्त हैं और दो हिस्सों में विभाजित है इस में श्रीस्वामिशङ्कराचार्य जीके शङ्करभाष्यनामक संस्कृतटीका से नवलभाष्यनामक भाषा टीका श्रीमान् मुंशीनवलकिशोर जी के महान् व्यय व आकांक्षा से पण्डितउमादत्तजी ने किया है जिससे भगवद्गीता के अति गूढ़ गूढ़ स्थलभी भाषामात्र के जानेवाले समझसकते हैं ॥